Chairman's Report
1990-91

प्रकाशकीय

कहानी लोक-साहित्य का हृदय है। साक्षर-निरक्षर बालक, वृद्ध, धनवान या निर्धन सभी के लिए वह समान रूप से उपयोगी है। कहानी साहित्य की यह एक विशेषता है कि वह जितनी सुनी और पढी जाती है उतनी ही सहज रूप से स्मरण हो जाती है। जीवन मे सस्कार प्रदान करने के लिए कहानी से बढकर अन्य कोई सुगम साधन नही है। यही कारण है कि विश्व के प्रत्येक अचल मे कहानी साहित्य लोकप्रिय रहा है।

जैन कथा साहित्य बहुत ही विशाल है, जो सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश और विविध प्रान्तीय भाषाओ मे लिखा गया है। श्रद्धेय सद्गुरुवर्य अध्यात्मयोगी श्रीपुष्कर मुनि जी महाराज ने जैन कथाओ को आधुनिक भाव-भाषा मे प्रस्तुत कर हिन्दी साहित्य को एक महान देन दी है। कथाओ की भाषा प्राञ्जल और परिष्कृत है। कथाओ की घटनावस्तु रोचक व आकर्षक है। पुन-पुन कथाओ को पढने का मन होता है।

इन कथाओ के सम्पादन का श्रेय समर्थ साहित्यकार श्री देवेन्द्र मुनि जी व कलम-कलाधर श्रीचन्द जी सुराना 'सरस' को है। श्री देवेन्द्र मुनिजी को अनुशीलनात्मक गम्भीर ग्रन्थो के प्रणयन मे लगे रहने से व लम्बे-लम्बे विहार मे समयाभाव रहा

अत' सम्पादन के कार्य को श्री 'सरस' जी ने वहुत ही शीघ्र आगे वढाया अत हम 'सरस' जी के हार्दिक आभारी है। हमारा सकल्प है कि पूज्य गुरुदेव श्री के दीक्षा-स्वर्णजयन्ती के पावन प्रसग पर जो अगले वर्ष ही आ रहा है उस समय तक कथाओं के २५ भाग प्रकाशित हो जाये। प्रवुद्ध पाठक जो सत्साहित्य की खोज मे इधर-उधर भटक रहे है उनको एक प्रेरक-रोचक व जीवन-निर्माणकारी साहित्य प्राप्त हो सकेगा ऐसी हमारी योजना है।

पूज्य गुरुदेव श्री के असीम उपकार का हम क्या आभार माने। जो कुछ भी है वह उन्ही की कृपा का फल है, पर उनके सुयोग्य शिष्यरत्न समर्थ साहित्यकार श्री देवेन्द्र मुनि, काव्यतीर्थ रमेश मुनिजी, उदीयमान साहित्यकार राजेन्द्र मुनि जी, दिनेश मुनिजी, सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्रीचन्दजी सुराना 'सरस, का आभार अवश्य मानेगे जिन्होने साहित्य-सेवा के लिए मगलमय प्रेरणा ही प्रदान नही की, वल्कि सहयोग भी प्रदान किया।

साथ ही इस प्रकाशन मे जिन उदार सज्जनो ने अर्थ सहयोग देकर सस्था को प्रोत्साहित किया है उनका भी आभार मानकर उनके अनुकरणीय सहयोग का सत्कार करते है।

आशा है हमारा यह प्रयत्न 'जैन कथाए' के रूप मे—'वाल स्त्री-वृद्ध-मूर्खाणा' की उक्ति के अनुसार 'सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय' होगा।

मत्री

—श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय

सम्पादकीय

साहित्य मे 'कथा' सबसे अधिक सरल, सरस और शीघ्र प्रभावकारिणी विधा है। विश्व के साहित्य मे कथा साहित्य सर्वाधिक प्रिय रहा है, इसलिए अन्य साहित्य की अपेक्षा उसका विस्तार भी बहुत व्यापक स्तर पर हुआ। भारतीय साहित्य मे भी कथाओ के रूप मे विशाल साहित्य ग्रन्थ उपलब्ध है, कथा साहित्य का अक्षय भडार भारतीय साहित्य की विशिष्ट निधि है।

भारतीय कथा साहित्य मे भी जैन एव बौद्ध कथा साहित्य अपना विशिष्ट महत्व रखते है। श्रमण परम्परा—जैन एव बौद्धो ने भारतीय कथा साहित्य की न केवल श्रीवृद्धि की है, अपितु उसको नयी दिशा भी दी है। कथा का मूल प्रयोजन मनोरजन तथा मनोरजन के माध्यम से शिक्षा देना रहा है। श्रमण परम्परा के कथा-साहित्य मे कथा सिर्फ मनोरजन के लिए नही, किन्तु मनोरजन के साथ ही वैराग्य, आचार, धर्म, दर्शन, नीति, पुनर्जन्म कर्म-फल आदि विषयो की सजीव अभिव्यक्ति करना रहा है। बौद्धो की जातक कथाए भी प्राय इसी शैली पर है। जैन कथा साहित्य का तो मूल लक्ष्य ही रहा है—"कथा के माध्यम से कोई न कोई सत्प्रेरणा देना।"

आगमो से लेकर पुराण, चरित्र, काव्य, रास, एव लोक-कथाओ के रूप मे जैनधर्म की हजारो-हजार कथाएँ प्रसिद्ध हैं। पुराणों एव रास तथा व्याख्यानो के रूप मे वे आज भी बडे चाव से पढी-सुनी जाती है। अधिकतर कथा-साहित्य मे प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रश, गुजराती एव राजस्थानी भाषा मे होने के कारण, और वह भी पद्य-बद्ध होने के कारण बहुसख्यक पाठक उससे लाभ नही उठा सकता, सिर्फ उसकी महिमा एव वर्णन सुनकर ही कुछ जान पाता है।

जैन कथा साहित्य की इस अमूल्य निधि को आज की लोक भाषा—राष्ट्रभाषा हिन्दी के परिवेश मे प्रस्तुत करना अत्यन्त आवश्यक है। इधर मे कुछ सुन्दर प्रयास भी प्रारम्भ हुए हैं मुनिश्री महेन्द्रकुमार जी, श्री मधुकर मुनि जी, उपाध्याय श्री अमरमुनि जी आदि विद्वान मुनिवरो ने प्रयास प्रारम्भ किया है, जिससे जनता को काफी कथा-साहित्य पढने को प्राप्त हुआ है। पर, अपार, अथाह कथा-सागर का आलोडन किसी एक व्यक्ति से सभव नही है। जैसे जगन्नाथ के रथ को हजारो हाथ मिलकर खीचते है, उसी प्रकार प्राचीन कथा-साहित्य के पुनरुद्धार के लिए अनेक मनस्वी चिन्तको के दीर्घकालीन प्रयत्नों की अपेक्षा है। इसी आवश्यकता की पूर्ति हेतु पूज्य गुरुदेव राजस्थानकेसरी अध्यात्मयोगी श्री पुष्करमुनि जी महाराज वर्षों से प्रयास कर रहे है। पूज्य गुरुदेव श्री ने अपने विशाल अध्ययन-अनुशीलन के आधार पर सैकडो जैन कथाए लिखी हैं, जो प्राचीनतम सभ्यताओ, सस्कृतियो और मानव-स्वभावो को परखने में उपयोगी है।

हमारा महान मद्भाग्य है कि पूज्य गुरुदेव श्री द्वारा लिखित गद्य-पद्यात्मक उस विराट कथा साहित्य के सम्पादन का उत्तरदायित्व हमे प्राप्त हुआ है। हम उस प्रयत्न मे कहाँ तक मफल हो सके है इमका निर्णय विज्ञ पाठक करेंगे। हमे तो इस वात की प्रसन्नता है कि साहित्य सेवा का सुअवसर प्राप्त हुआ और जनता के लिए सत्साहित्य के रूप मे एक सद्मित्र को प्रस्तुत करने का प्रमग आया।

—देवेन्द्र मुनि

—श्रीचन्द सुराना 'सरस'



लेखक की कलम से

जैन कथासाहित्य : प्रयोजन और स्वरूप

जैन आगमो के ऐतिहासिक अनुशीलन से यह पता चलत है कि भगवान महावीर अपने धर्मोपदेश मे कथा-कहानियाँ-रूप आदि का प्रयोग कर धर्म एव तत्वज्ञान के गम्भीर तत्व को अधि से अधिक सरल, सुगम, सुबोध और रुचिकर बनाने मे अत्यन्त निपुण थे । 'नायाधम्मकहा, विपाकसूत्र, निरयावलिका उत्तराध्ययन आदि आगमो से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भगवान महावीर ने हजारो ऐसे दृष्टात और रूपको का प्रयोग अपनी देशना मे किया था । दुर्भाग्य से उनमे से कुछ ही अश आज प्राप्त है और काफी अश विलुप्त हो गया है ।

भगवान महावीर के उपदेशो मे अधिकतर लघु-कथा, आख्यायिका और लघुरूपको का प्रयोग ही हुआ करता था । उन कथाओ के पीछे एक पवित्र प्रयोजन रहता था —कि श्रोताओ की शुभ-जिज्ञासा जागृत हो, असद्कर्म से निवृत्त होकर शुभकर्म-प्रवृत्ति की प्रेरणा प्राप्त हो । कथा-रचना मे ऐसा उच्च एव उदात्त आदर्श जैनकथा वाङ्मय की अपनी विशिष्टता है । साधारणत कथा का प्रयोजन मनोरंजन होता है, पर, जैनकथा के विषय मे यह अधिकारपूर्वक कहा जा सकता है कि उसका प्रयोजन

नोरंजन मात्र नही है, किन्तु मनोरंजन के साथ किसी उच्च आदर्श की स्थापना करना, अशुभकर्मो का कटुफल-परिणाम बताकर शुभकर्म की ओर प्रेरित करना रहा है। उच्चतर सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यो की प्रतिष्ठा करना, व्यक्तित्व के मूलभूत गुण—साहस, अनुशासन, चातुरी, सज्जनता, उदारता, सदाचार एवं व्रतनिष्ठा आदि को प्रोत्साहित करना तथा उनके चरित्र मे उन सस्कारो को बद्धमूल करना—यही जैन-कथा साहित्य का मूल प्रयोजन है।

आगम साहित्य के बाद मे जो कथा साहित्य रचा गया, उसकी धारा मे एक नया परिवर्तन आया। आगमगत कथाओ, चरित्रो और महापुरुषो के छोटे-मोटे जीवन प्रसगो को लेकर मूल कथा वस्तु मे अवान्तर कथाओ का सयोजन तथा मूल चरित्र को पूर्वजन्मो की घटनाओ से समृद्ध करना, कथा वस्तु का विकास और विस्तार करना यह पश्चाद्वर्ती कथा साहित्य की एक शैली बन गई। इस कथा शैली पर रामायण, महाभारत एव जातक शैली का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इसे हम पौराणिक कथाशैली कहे तो इस शैली का सबसे प्राचीन जैन कथाग्रन्थ वसुदेव-हिंडी है जो (प्राकृत-गद्यबहुल) प्राचीनतम आकर कथा ग्रन्थ है। इसके बाद वाल्मीकिरामायण की शैली पर विमलसूरि ने 'पउम चरिय' एव व्यास के महाभारत की अनुकृति पर 'हरिवंस चरिय' जैसे दो दो विशाल कथा ग्रन्थो का प्रणयन किया। इसके पश्चात यह पौराणिक शैली इतनी लोकप्रिय हुई कि महापुरुषो के जीवन चरित्रो को आधार बना कर 'चउप्पन्नमहापुरिस चरिय' 'त्रिषष्टि शलाका पुरुषचरित्र' आदिनाथचरित्र- शांतिनाथचरित्र,

मल्लिनाथचरित्र, नेमिनाथचरित्र, पार्श्वनाथचरित, महा
चरित, आदि अनेक तीर्थकरो, चक्रवर्ति-वासुदेव, बलदेवो आ
के स्वतन्त्र चरित्र ग्रन्थो की रचनाए हुई। और इन चरित्र ग्र
मे सैकडो अवान्तर कथाओ की सयोजना कर उन्हे रोचक औ
विस्तृत बनाया गया।

आख्यायिका पद्धति पर भी जैनाचार्यो ने अनेक सरस र
ग्रन्थो की रचना की। पादलिप्तसूरि की तरगवती अथव
'तरंगलोला' हरिभद्रसूरि की 'समराइच्चकहा 'उपदेशपद
उद्योतनसूरि की 'कुवलयमाला कहा' विजयसिंहसूरि
भुवनसुन्दरी कथा, जिनेश्वरसूरि की 'निर्वाण लीलावती कथ
आदि आख्यायिका कथा शैली के प्रमुख एव प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

कथा ग्रन्थो की रचना मे एक तीसरी शैली का विकास भी
हुआ जिसे हम 'कथाकोष' या कथा-सग्रह के रूप मे आज प्राप्त
करते हैं। जिनेश्वर सूरि का 'कथाकोष प्रकरण', आम्रदेव सूरि
—'आख्यानक मणिकोष' हरिषेणकृत 'वृहत्कथा कोष' धर्मदा
गणिकृत 'उपदेशमाला' तथा शुभवर्धनगणिरचित वर्धमा
देशना' आदि विविध कथा-कुसुमो के गुलदस्ते के रूप मे ये कथ
ग्रन्थ छोटे-छोटे कथानको के द्वारा सत्कर्म की शुभ प्रेरणा-परा
फैला रहे है। विजयलक्ष्मीसूरिकृत 'उपदेशप्रासाद, (पा
भाग) भी एक प्रकार का वृहत्कथाकोष कहा जा सकता
जिसमे विविध विषयो की सैकडो कथाएं सकलित है। इस
अतिरिक्त विद्वान आचार्यो ने समय-समय पर किसी एक पौरा
णिक चरित्र को लेकर, किसी आगमगत कथा सूत्र को लेकर
अन्य स्वतन्त्ररूप से भी कथा-सर्जन कर सैकडो कथा ग्रन्थो

नाएँ की है। ये कथा ग्रन्थ पहले प्राकृत मे रचे जाते थे, फिर
कृत शैली चली, फिर अपभ्रश युग आया तो अपभ्रश मे भी
खे गये और बाद मे अनेक जैन कवियो ने गुजराती, गुजराती-
श्रित राजस्थानी मे रास, चौपाई, बखाण के रूप मे सैंकडो
रस रोचक और प्रेरणाप्रद कथा काव्यो की सृष्टि से सरस्वती
भडार को समृद्ध किया। परम्पराओ की भिन्नता, अनुश्रुतियो
अन्तर एव समय के दीर्घ-व्यवधान के कारण कथासूत्रो मे
रस्पर भिन्नता और घटनाओ का जोड-तोड भी काफी भिन्न
गया। अनेक कथाएँ तो ऐसी है, जो बडी प्रसिद्ध होते हुए भी
। ग्रन्थो मे बडी भिन्नता लिये रहती है। कुछ कथाएँ आगमो
वर्णित है, उनको पश्चात्‌वर्ती साहित्य मे अवान्तर कथाएँ जोड-
र विस्तृत भी कर दिया गया है।

कथा सूत्रो की इस विविधता को देखकर यह प्रयत्न करना
क कथा का मूल स्रोत कहाँ है- कैसा है, और उसमे जो मत भेद
अवान्तर कथाए है वे मान्य हो या नही—यह कार्य सिर्फ
ल-मथन जैसा ही होगा।

कथाओ की ऐतिहासिकता की खोज के बजाय हमारा लक्ष्य
नकी प्रेरकता की ओर रहना चाहिए। हजारो लेखको ने भिन्न-
भिन्न देश-काल मे जो कथा ग्रन्थ रचे है उनमे मत-भिन्नता, कथा
त्र का जोड़-तोड भिन्न प्रकार का तथा नाम आदि की भिन्नता
ना सहज ही है। अनेक कथा ग्रन्थो के पर्यवलोकन से हमारा
ह विश्वास बना है कि हमे प्राचीन ग्रन्थो की 'शव-परीक्षा' न
रके 'शिव-परीक्षा' (कल्याणकारी तत्व की परीक्षा) करने की
दत डालनी चाहिए। जिस कथा-ग्रन्थ मे जहाँ जो उच्च

आदर्श, प्रेरकतत्व और जीवन-निर्माणकारी मूल्यो के दर्शन ह
है, उन्हे बिना किसी भेदभाव के ग्रहण कर लेना चाहिए
अनेक ग्रन्थो मे ऐसा देखा जाता है कि एक ही कथानक अल
अलग प्रसग मे अलग-अलग रूप मे अकित मिलता है। क
कथानक का पूर्वार्ध देकर ही उसको छोड दिया है, कही उत्तर
कही कुछ अश ही । ऐसी स्थिति मे कथा सूत्रो को सपूर्ण रूप
लिखना बडा कठिन हो जाता है, और उनमे विवादास्पद प्रश्न
खडा हो सकता है। हमने ऐसे प्रसगो पर प्रयत्न यह किया
कि जहाँ तक जो कथा सूत्र परिपूर्ण मिला है उसे दो तीन क
ग्रन्थो के सन्दर्भो मे जोडकर पूर्ण करने का प्रयत्न किया है, कि
कथा साहित्य की विशालता और विविधता को देखते हुए कि
कथानक की पूर्णता, समग्रता और प्राचीनता की पूर्ण गारन्टी
नही दी जा सकती। यह तो बहुश्रुत-पाठको पर ही निर्भर
कि उन्हे, कही कोई किसी कथा सूत्र से सबन्धित नया क
नक मिले, तो वे लेखक को सूचित करे ताकि उसके सशोध
परिवर्धन मे प्रगति हो सके।

'जैन कथाए' नाम से जो पुस्तक अलग-अलग भागो मे पाठक
के हाथो दी जा रही है, उसमे कही कोई एक ही सपूर्ण कथान
पूरी पुस्तक मे है, तो कही छोटे-छोटे अनेक कथानक एक पुस्त
मे सकलित किये गये है। हमे विश्वास है कि इससे पाठको
अनेक प्रकार के रोचक चरित्रो के माध्यम से विविध प्रकार
प्रेरणाएँ प्राप्त होगी। यह विविध प्रकार की रुचिवाले पाठ
की विभिन्न रुचियो को तृप्त करने का एक सफल प्रयत्न सि
हो सकेगा।

स्तुत कथा भाग

'जैन कथाएँ' के इस आठवे भाग मे विविध विषयो की ६ कथाए संकलित की गई है। इन कथाओ मे जहाँ नारी शील एव साहस की परिचायक पहली कथा है, वहाँ दूसरी कथा मे दो भाईयो के साहस एव पराक्रम की रोचक गाथा अंकित हुई है। कथा मे अनेक घुमाव है, बौद्धिक कौशल एव भ्रातृप्रेम तथा भाई के लिए भाई के उत्सर्ग का अनुकरणीय उदाहरण इस कथा मे है। तीसरी कथा 'विष और विषय' शीर्षक से विषय का मानसिक संकल्प भी कितना भयंकर होता है, और उसके कटुफल जन्म-जन्मान्तरो तक भुगतने पडते है, यह बताया गया है।

'जागे तभी सवेरा' कहानी मे प्रत्येकबुद्ध करकण्डु की एक और वैराग्यप्रधान कहानी है। प्रथम एक प्रत्येकबुद्ध नमिराज की कहानी भाग सात मे आ चुकी है। बाकी तीन प्रत्येकबुद्धो की कहानी इस भाग मे है। इस प्रकार जैन साहित्य मे विश्रुत चार प्रत्येकबुद्धो की वैराग्यमूलक रोचक कथाएँ भाग ७-एव ८ मे आ गई है।

'एक दुर्लभ क्षण' मे प्रत्येकबुद्ध द्विमुख की कहानी है, जो एक स्तंभ को देखकर संसार की असारता को समझ लेता है और प्रतिबुद्ध होकर त्याग के पथ पर अग्रसर हो जाते है।

'साझ-सवेरे' कहानी मे बडी विचित्र पहेलियो के साथ प्रत्येकबुद्ध नग्गति का वर्णन है। रानी कनकमाला ने कितनी चतुरता के साथ राजा को कहानियो से उलझाये रखा, प्रतिदिन उसका आकर्षण बनाये रखा—यह बडा ही रोचक वर्णन इस

कथा मे है। अन्त मे राजा नग्गति प्रातःकाल हरा भर
देखता है और सध्या समय उसी वृक्ष को ठूठ के रूप मे
कर चिन्तन मे लीन हो जाता है और सीधा आत्म-दर्शन
प्रतिबुद्ध हो जाता है।

'चक्री और धर्मचक्री' मे ब्रह्मदत्त चक्री का वर्णन है,
भाई भोग का मार्ग अपना कर राज्य-भोग मे आसक्त है
है और मरकर सातवो नरक मे जाता है तो दूसरा भाई त
मार्ग अपना कर आत्म-कल्याण के पथ पर अग्रसर होता है।

'जहाँ आप वहाँ मै' मे दूसरे चक्रवर्ती सगर का वर्णन
जिसके साठ हजार पुत्र एक दिन मे ही क्रूरकाल के गास
गये। चक्रवर्ती सगर इस घटना से प्रतिबुद्ध होकर भगव
अजितनाथ के पास आकर सयम ग्रहण करते हैं।

इस कथा भाग की अन्तिम कहानी है—'विधि के खेल
केवल नियति पर विश्वास करने वाला व्यक्ति अकर्मण्य हो जा
है, यह जितना सत्य है उतना ही सत्य यह भी है कि निय
पर विश्वास रखने से विकट सकट की घडियो मे भी व्यक्ति
विचलित नही होता, धीरज और विश्वास का सहारा ले
जीवन को आनन्दमय रख सकता है। 'धनद' के जीवन क
से यह स्पष्ट सूचित हो जाता है।

इस प्रकार प्रस्तुत भाग की कथाओ में अनेक प्रकार
प्रेरणाएँ है। शील, सत्य, सदाचार, भ्रातृ-प्रेम, ससार
नश्वरता, भाग्य की विडम्बना आदि विषयो पर पर्याप्त प्रा
पडता है।

मै प्रवचनो मे यदा-कदा इन कथाओ के पद्यवद्ध चरित्रो
। वाचन करता हूँ, श्रोताजन उन्हे वडे ही चाव से सुनते
। मुझे आशा है पाठक भी इन कथाओ को उसी उमग
दिलचस्पी के साथ पढेंगे।

इनका सुन्दर सम्पादन देवेन्द्र मुनि एव श्रीचन्द जी सुराना
किया है, मैं उनको हार्दिक साधुवाद देता हूँ।

—पुष्कर मुनि

अनुक्रमणिका




१

महासती शीलवती

आषाढ का महीना । जल मे भरी घटाओ ने रात को और भी अधिक काला कर दिया था । श्रेष्ठी रत्नाकर की पुत्रवधू रात के सन्नाटे में अकेली नदी तट की ओर जा रही थी । रत्नाकर के घर से नदी को दूरी कोई आधा कोश तो होगी ही । इस समय रात के गहन अंधकार ने उसे अपने आँचल मे ढक लिया था—पर श्रेष्ठी रत्नाकर का एकमात्र पुत्र अजितसेन अपनी पत्नी शीलवती को देख रहा था । जब वह शय्या से उठकर, घर से निकला तो वह चकित हो कुछ देर देखता रहा, सोचता रहा, आगे क्या होगा, अब यह क्या गुल खिलायेगी · यह देखने के लिए ही वह जागकर भी सो रहा था । अजितसेन सोच रहा था—'स्त्री-जाति का कोई भरोसा नही । मेरी पत्नी यह शीलवती पति-परायणा बनती थी - · इसका साहस तो देखो, मुझे कोई हजार स्वर्णमुद्राएँ दे, तो भी रात के इस सन्नाटे में घर से बाहर जाने की हिम्मत न पड़े । उफ् ! कितनी डरावनी बरसात की रात ! नदी-तट का भयानक जंगल, शृगालों की डरावनी आवाजे और यह अपने प्रेमी से अभिसार करने

अकेली चली जा रही है ? दुःशीला, दुराचारिणी....व्यभि
चारिणी, अब तेरा भण्डाफोड हो गया, अब मैं तुझे
बड़बड़ाता हुआ अजितसेन करवटे बदलता रहा औ
पर्याप्त समय बिताकर शीलवती नदीतट से वापस आक
सो गई।

× × ×

बहुत पुराने समय में नन्दपुर नामक नगर में रत्ना
कर नाम का एक धनाड्य श्रेष्ठी रहता था। अजितसे
उसका एकमात्र पुत्र होने के कारण माता-पिता का बहु
लाड़ला था। घर मे लक्ष्मी का निवास था। धन
कोई कमी नही थी। इसके अलावा राजदरबार मे
सेठ रत्नाकर का बहुत मान था। सेठ ने अपने पुत्र अजित
सेन का विवाह परम रूपवती और साक्षात् बुद्धिरू
शीलवती नाम की श्रेष्ठीकन्या से किया था। शीलवत
अपने नाम को सार्थक करने वाली नारी थी। रत्नाक
ऐसी विचक्षण पुत्रवधू और अजितसेन ऐसी पति-परायण
रूपसी पत्नी को पाकर अपने को धन्य मानते थे। पर उ
रात की घटना ने अजितसेन को विक्षिप्त-सा कर दिया
जैसे-तैसे रात काटी और प्रातः होते ही अपने पिता
पास प्रणाम करने को पहुँचा तो उदास मन देखकर श्रेष्ठ
रत्नाकर ने उदासी का कारण पूछ लिया। अजितसे
विक्षिप्त की भाँति बोल पड़ा—

"पिताजी ! अब मैं अपने नाम का कलंक दुःशील
शीलवती को एक पल भी घर मे नही रखूँगा।"

पुत्र की अनपेक्षित वात सुनकर सेठ रत्नाकर भौचक्का रह गया। क्षण-भर वह अजितसेन की ओर देखता रहा। फिर कुछ देर वाद वोला –

"वत्स अजितसेन! यह तुम क्या कहते हो? वहू शीलवती को दुःशीला कहकर कही तुम अपनी जवान तो गन्दी नही कर रहे हो? मालूम पडता है, कोई वुरा स्वप्न देखकर उठे हो।"

"वस-वस, पिताजी वस!" वीच में ही अजितसेन वोल उठा—"काश! मैंने जो कुछ देखा, वह एक सपना ही होता। रात मैंने अपनी आँखो से देखा" वह एक असलियत थी –

"क्या...?" रत्नाकर ने पूछा—

"यही जो शीलवती से आशा नही थी।" कहते हुए अजितसेन की जवान लडखडाने लगी। दो क्षण रुककर वह वोला—

"रात दो पहर वीत गई थी। नदी-तट से शृगालों के वोलने की आवाजें आ रही थी। मेरी आँख खुल गई। मैंने देखा शीलवती कही जाने की तैयारी कर रही है। जव वह जाने को हुई तो मुझे जगा देखकर ठिठक गई और फिर नही गई। उसका असली चरित्र जानने के लिए मैं झूठी नींद सो गया। मुझे सोता देखकर वह एक थैले में कुछ लेकर निकली और नदी की ओर चली गई। मैं महल की खिडकी से सव कुछ देखता रहा, और जव वह

लौटी तो उसने मुझे पहले की तरह सोता हुआ पाया
अब तक मेरी जानकारी में ही वह शीलवती थी, प
अब …।”

सेठ ने निर्णय दिया—

“अजित ! होगा वही जो तू चाहता है, पर ते
तरह मैं उसे कलंकित करके घर से नही निकालूँगा। व
सुशील हो या दुःशील - इस तरह निकालने से तो कु
की वदनामी होगी। मैं ऐसा उपाय करूँगा कि सांप भ
मर जाए और लाठी भी न टूटे।”

× × ×

आज सेठ रत्नाकर जब अचानक शीलवती के कम
में पहुँचा तो बहू ने उसका पूर्ववत् वन्दन किया। आशी
र्वाद देने के उपरान्त सेठ ने कहा—

“बहू ! तुम्हारे पिताजी की सूचना आई है, उन्हो
तुम्हें बुलाया है। तुम तैयार हो जाओ, मैं तुम्हे घर छो
आऊँगा।” मुझे उधर जाना ही है ।

शीलवती सब कुछ समझ गई। उसने विचार किय
कि रात को मेरा आना-जाना शायद मेरे पति ने दे
लिया है, इसलिये मेरा देश-निकाला हो रहा है। शील
वती ने भी अनजान वनकर कहा—

“पिताजी ! यह तो आपने वड़ी अच्छी खवर सुना
मेरा मन भी पीहर जाने को कर रहा था। मैं अ
तैयार होती हूँ।”

थोडी ही देर मे शीलवती तैयार हो गई और सेठ ...ाकर रथ मे वैठाकर उसे उसके पीहर की ओर ले ...ला।

धूप की सुनहरी चादर ने कुछ कुछ सफेदी धारण कर ...ी थी और साथ ही धूप की उष्मा भी वढ गई थी। सेठ ...नाकर का रथ वढा चला जा रहा था।

रत्नाकर यह नही चाहता था कि मेरे किसी व्यवहार ... वहू को शक हो कि मैं उसे त्यागने के लिए पीहर ले ...ा रहा हूँ, इसलिए कोई अस्वाभाविक व्यवहार वह नही ...र रहा था। प्रसंग आने पर वह शीलवती से वातचीत ...रता और वहू भी सहज रूप से उसका उत्तर देती। ...किसी-न-किसी वात को लेकर सेठ वहू से वार्त्तालाप करता। ...क हरे-भरे मूँग के खेत को देखकर सेठ रत्नाकर ने कहा—

"वहू! देखो मूँग का यह खेत कितना फला है। ...र पौधा फलियो से इतना लदा है कि मूँग की फलियाँ-...ी-फलियाँ दीख रही है, फलियों ने पत्तो को भी ढक ...गया है। वडी अच्छी पैदावार होगी। इसका मालिक ...किसान तो मालामाल हो जाएगा। अच्छी फसल भी ...ाग्य से मिलती है। जाड़ा-पाला, वरसात, सूखा कितनी ...ाधाओ को जीतकर फसल घर में आती है।"

वहू ने भी गंभीर होकर उत्तर दिया—

'पिताजी! इसका मालिक किसान तो भूखो मरेगा, ...ाने-दाने को तरसेगा। फसल अच्छी हो या वुरी, उसे ...टी भी नसीव नही।"

सेठ को आशा थी कि वहू मेरी बात का समर्थन करेगी, पर शीलवती ने तो एकदम उल्टी और असं बात कह दी। शीलवती की बात थी तो अखरने वाली पर सेठ को बुरी नही लगी, क्योंकि शीलवती के कथन इतनी मिठास और शालीनता थी कि सेठ ने बात न बढाई। 'वास्तव मे वहू मूर्ख है' यह सोच सेठ चुप गया, क्योकि मूर्ख दया का पात्र होता है, क्रोध का नहीं

रथ जब कुछ और आगे बढा तो सेठ ने देखा, ए घायल व्यक्ति पडा कराह रहा है। यह व्यक्ति वीरवेग था। वगल में कंधे से उतरा एक धनुष पडा था और प ही तरकस रखा था। घायल को देखकर सेठ ने कहा—

"कोई योद्धा-वीर घायलावस्था मे कराह रहा है

"यह तो वडा कायर और भीरू है – वीरता का इ क्या सम्बन्ध ?" शीलवती ने अपनी राय प्रकट कर दी

सेठ को कुछ अखर गया। उसने मन में सोचा, मूर्ख और दु शील ही नही—उद्दण्ड भी है। जाने अ सेन से इसकी कैसे पटती होगी। इसके मुंह लगने से चुप रहना ही ठीक है।'

सूर्य डूबने में एक प्रहर की देर थी। एक मन्दिर सेठ ने कहा—

"वहू! तुम्हारे पिता के नगर तो अव कल ही पायेंगे। एक-दो घण्टे मे कितना चल पायेंगे। इस म से अच्छा पडाव कहाँ मिलेगा ? रात यही व्यतीत और सवेरे चल देगे।"

शीलवती ने विरोध किया—

"नही पिताजी, इस नरक में ठहरना ठीक नही। अभी सूरज डूबने में देर है, तब तक कोई-न-कोई गाँव आ जाएगा, वही ठहर लेंगे।"

सेठ ने निश्चय कर लिया कि यह मूर्खा मेरी हर बात का विरोध करेगी। अब इससे क्या करूँ मूर्ख से बहस करना भी मूर्खता है। यह देवालय को नरक बताती है कैसी है..? कुछ खिन्न होकर सेठ ने कहा—

"अच्छा बहू! जहाँ तू कहेगी, वही ठहर जायेंगे।"

आगे एक गाँव आया तो सेठ ने कहा—

"अब तो यही ठहर जाना ठीक है।"

शीलवती ने फिर टाँग अडाई—

"पिताजी! इस श्मशान मे ठहरना उचित नही है। अभी तो काफी दिन है, किसी अच्छे गाँव में ठहरेगे।"

"तेरी इच्छा।" यह कह सेठ ने रथ आगे बढवा दिया।

कुछ दूर चलने के बाद एक गाँव आया तो शीलवती ने कहा

"पिताजी! इसी गाँव मे ठहरेगे।"

शीलवती का निश्चय जान सेठ ने सोचा—'कुछ-न-कुछ दाल मे काला अवश्य है। पहला गाँव इसने मरघट बता दिया और इस गाँव मे ठहरने को राजी हो गई। यह मूर्खा बडी रहस्यमयी है। आज यह कुछ भी करा ले,

कल तो इसे इसके पीहर छोड़ ही दूँगा और सदा-सदा के लिये अपना पिंड छुड़ा लूँगा।"

सेठ रत्नाकर ने रथ को एक पेड़ के पास खड़ा कर दिया। शीलवती पेड़ के नीचे न लेट, रथ में ही लेट गई। पेड़ पर बैठे कौए ने ऊपर से सेठ के कपडों पर बीट कर दी और फिर कॉव-कॉव करने लगा।

पशु-पक्षियों की भाषा समझने वाली शीलवती ने कौए की कॉव-कॉव का मर्म समझा। रथ में बैठी-बैठी वह कौए से बोली—

"अरे कौए! तू मुझे किस संकट में डालना चाहता है? एक शृगाल की बात मानने पर तो मुझे देश निकाले का दण्ड मिला, तेरी बात मानूँगी तो मुझे शायद प्राण भी देने पड़े।"

शीलवती की बात सुनकर सेठ ने सोचा, 'कहीं यह बहू पागल तो नहीं है? यह अकेले किससे बातें कर रही है? शृगाल···कौआ—कौए से यह क्या कह रही है। ओह! इस दुष्ट कौए ने तो बीट करके मेरे कपड़े बिगाड़ दिये।'

शीलवती के पास आकर सेठ बोला—

"बहू! तू इस कौए से क्या कह रही थी? और शृगाल की क्या बात है?"

शीलवती ने कहा—

"पिताजी! यह कौआ बड़े महत्व की बात कह रहा है। लेकिन आप उस पर विश्वास नहीं करेंगे।"

सेठ—"कॉव-कॉव के अलावा भी कौआ कुछ और हेगा ? इसकी कॉव-कॉव में तुझे कुछ महत्व दीखता हो ो तेरी बुद्धि को धन्य है।"

शीलवती—"पिताजी ! जो लोग पशु-पक्षिओ की ापा नही समझते, उनके लिये शृगाल की वोली 'हू-हू' ोर कौए की वोली सिर्फ कॉव-कॉव है।"

शीलवती के इस कथन से सेठ को कुछ रोष आ गया। ोप मे ही वह वोला—

"अगर तू समझती है कि कौए की कॉव-कॉव मे कुछ हस्य है तो मुझे वता, इसकी ।रीक्षा लेकर तेरी वात ाजमाऊँगा।"

शीलवती ने वताया—

कौआ कह रहा है कि मुझे कुछ दाना-दुनका खिला ो और वदले में इस पेड की जड मे गडे धन से भरे चार वर्ण कलशो को निकाल लो।"

सेठ को आश्चर्य, अविश्वास और लोभ तीनो ने ेर लिया। कौए को अपने भोजन मे से कुछ टुकडा डाला ौर फिर पेड़ की जड को चारो ओर से खोदा तो कुछ हराई के वाद स्वर्ण मुद्राओ से भरे सोने के चार कलश नकले। सेठ के घर धन की कमी नही थी, पर इस तरह स्वर्ण कलशों को पाकर उसकी ऑखे फटी-की-फटी रह गईं। शीलवती कितनी बुद्धिमती है, यह उसकी समझ मे आ गया। सेठ ने निश्चय मान लिया कि रास्ते मे

इसने मेरी हर बात का विरोध किया था,लेकिन इसके विरोध में कोई न कोई रहस्य अवश्य होगा। स्नेह और सम्मान के मिश्रित भाव से उसने पूछा—

"बहू ! यह शृगाल वाली क्या बात है ?"

शीलवती ने रहस्योद्घाटन किया—

"पिताजी ! मैं पशु-पक्षिओ की बोली समझती इस रहस्य को आपके पुत्र और आप दोनों ही नही जा पिछली रात नदी-तट पर एक शृगाल अपनी भाषा कह रहा था कि नदी में एक मुर्दा बहा जा रहा है। मु किनारे के एक पेड़ से अटक गया है। उसकी जाघ पाँच अनमोल रत्न सिले हुए है। कोई आदमी मुझे भोजन करा दे और उन रत्नो को ले ले।

"पिताजी ! शृगाल की आवाज सुनकर मैंने नदी-त पर जाने का निश्चय किया और साथ मे उसके लि भोजन लेकर चलने को हुई तो देखा कि आपके पुत्र जा रहे है। मैंने सोचा कि यदि मैं नदी-तट पर जाने क कारण बताऊँगी तो इन्हे विश्वास नही होगा। जै अभी आपने कोए की बात को केवल काँव-काँव माना थ वैसे ही वे भी शृगाल की बोली को एक बहाना समझेंगे अतः मैंने सोचा कि जब ये सो जाएँगे, तभी जाऊँगी उन्हे सोता देख मैं चली गई और पाँचो रत्न लेकर घ आकर पुनः सो गई। सवेरे जब आपने पीहर चलने की बात कही तो मैं यह समझ गई थी कि आपके पुत्र ने मेर

-त का जाना देख लिया है। इसी कारण दुःशीला समझ
-र आप मुझे पिताजी के बुलावे का बहाना लेकर घर
निकाल रहे है। मैंने सोचा कि सचाई कब तक छिपेगी
भी-न-कभी आपके सामने आ ही जायगी। आपके
ाशीर्वाद से आज ही सचाई सामने आ गई।"

सेठ रत्नाकर की आँखो से प्रेमाश्रु बह रहे थे। अपने
ावो को संयत कर सेठ ने कहा—

"बहू! रिस्ते से तू मेरे आशीर्वाद की अधिकारिणी
, मेरा जी चाहता है कि मैं तेरे चरणो का स्पर्श करूँ।
वास्तव मे सती नही, महासती है। अगर तू मुझे क्षमा
-र दे तो मेरा दुःख दूर हो जाएगा।"

शीलवती—"पिताजी! बडे कभी गलती नही करते।
्मा कैसी? आपने तो मेरे साथ उपकार ही किया है।
ान्ने को अगर कोल्हू मे न पेला जाय तो कैसे पता लगे
क वह रस की खान है? कसौटी पर कसे बिना सोने
का खरापन कैसे जाना जाए? आपके भाग्य मे धन से
भरे ये चार कलश मिलने थे और मेरी भी कसौटी होनी
थी, सो आप मुझे यहाँ तक ले आये।"

सेठ इतना आनन्द-विभोर था कि कुछ कहते नही
बन रहा था। जब उसका आनन्द कुछ स्थिर हुआ तो
उसने पूछा—

"बेटी! रास्ते में तेने मेरी हर बात का विरोध किया
था, उसका क्या कारण था?"

"पिताजी, वे सब कारण भी सुनिये।" शीलवती
कहना शुरू किया—

"पिताजी ! मूँग के हरे-भरे खेत का रहस्य यह
कि खेत की मेड़ पर एक सेठ की सूचना-पट्टी लगी थी
मालिक किसान ने वह खेत एक सेठ के यहाँ गिरवी रख
था। मूँग की वह फसल तो पूरी-की-पूरी उसी ऋणदा
सेठ की थी। किसान को मूँग का एक दाना भी नहीं
मिलेगा। इसीलिए मैंने कहा था कि मालिक किसान तो
भूखों मरेगा। दाने-दाने को तरसेगा। फसल अच्छी हो
या बुरी उसे रोटी भी नसीब न होगी।

"पिताजी ! उसके बाद आपने एक घायल सैनिक को
देखा तो उसे योद्धा-वीर बताया। मैंने उसे कायर कहा
था, क्योंकि उसकी पीठ में घाव थे। वीर की छाती में
घाव होते हैं।

"आपने मन्दिर में ठहरने को कहा था। मैंने देखा
कि मन्दिर के पास सुरा-पात्र पड़े हैं। मन्दिर होते हुए
भी वह स्थान शराब और जुए का अड्डा था, इसलिये
मैंने उस स्थान को 'नरक' कहा।"

"जिस गाँव में आपने ठहरने को कहा, वह गाँव
हमारा अपरिचित था। पिताजी ! अपरिचित और अन-
जान गाँव में रुकने से जोखिम की संभावना रहती है
इसलिये श्मशान कहकर मैंने वहाँ ठहरना ठीक नहीं
समझा। अकेले पुरुष को तो कोई खतरा नहीं, पर जब

ती साथ हो तो गुण्डे-वदमाशों की आशंका वनी ही
इती है ।"

शीलवती के युक्तियुक्त समाधान से अपने आश्चर्य
ौर जिज्ञासा का समाधान करके सेठ ने पुनः पूछा—

"वेटी ! तूने इस गॉव मे ठहरने को क्यो कहा और
पेड़ के नीचे न लेटकर रथ मे क्यो लेटी ?

शीलवती—"पिताजी ! पेड़ पक्षियो का घर है।
ता नही, कौन पक्षी कव वीट कर दे, इसलिए मैंने रथ
ं लेटना ही ठीक समझा । दूसरे, इस गॉव मे मेरे मामा
हते है, इसलिए यहाँ हम पूरी तरह सुरक्षित है । जरूरत
डने पर परिचित व्यक्ति का सहारा होता है ।"

"अव आप मामाजी के घर चलिये । वहाँ वड़े आराम
े रात कटेगी । सवेरे जैसी आपकी इच्छा हो, वैसा
रना ।"

शीलवती के मामा ने अपनी भानजी और सेठ रत्ना-
कर का भव्य स्वागत-सत्कार किया । दास-दासियो की
अच्छी सेवा परिचर्या मे दोनों ने वडे सुखपूर्वक वहाँ दो
दिन विताये । उसके वाद दोनो—शीलवती और सेठ
रत्नाकर नन्दनपुर वापस आ गये । सेठ रत्नाकर ने सव
घटनाएँ सुनाकर अजितसेन (पुत्र) का सदेह भी दूर
कर दिया ।

× × ×

शीलवती के लौटने पर अजितसेन के मन मे अपनी
पत्नी के प्रति सम्मान का भाव और अधिक वढ गया था,

अपने मन मे उसने शीलवती के प्रति जो सन्देह किया था, उसका उसे बहुत मलाल था। अजित सोचता था कि सचमुच मैंने शीलवती को दु'शीला कर अपनी जबान ही गन्दी की थी।

शीलवती की बुद्धि-चातुर्य और पतिव्रत की चर्चा पूरे नन्दनपुर नगर मे फैल गई थी। अब तक तो रत्नाकर का ही दरबार में आना-जाना था, अब अजित सेन भी नन्दनपुर के राजा का विश्वासपात्र और प्रेम भाजन बन गया था। राजा शासन सम्बन्धी तथा अन्य बातों में अजितसेन की सलाह लेता था।

एक बार राजा को शत्रु-दमन के लिए अपनी विशाल वाहिनी सहित युद्धभूमि मे जाना पडा। प्रेमवश वह अजितसेन को भी साथ ले गया। चलते समय महासती शीलवती ने अपने पति अजितसेन को एक कमल का पुष्प देते हुए कहा—

'स्वामी! यह सुमन साथ ले जाइये। यह फूल सदा खिला रहेगा—कभी मुरझायेगा नही। जब तक यह न मुरझाये आपकी शीलवती का सतीत्व अक्षुण्ण है। ऐसा समझ लेना।'

युद्धशिविर मे अजितसेन नित्य उस पुष्प को देखता। वह फूल ऐसा लगता मानो अभी-अभी किसी डाली से तोड़कर लाया गया हो। एक दिन राजा ने पूछा—

"अजित! यह नित्य प्रति खिला हुआ एक जैसा पुष्प तुम कहाँ से ले आते हो?"

अजित— 'राजन् ! यह फूल तो मै अपने साथ ही या था ?"

राजा —"लेकिन यह तो ताजे फूल की ही तरह खिला ता है। कभी मुरझाता नही ! यह विचित्र फूल तुम्हे हाँ से मिला ?"

अजित—"महाराज ! यह फूल तो और फूलो की रह ही सामान्य है, पर इसमें मेरी पत्नी के शील का ताप है, जो यह कभी नही मुरझाया—नित्य-नवीन वना हता है।"

राजा—"कौन-सा प्रताप, कैसा प्रताप ?"

अजित ने वताया—

"जव तक यह फूल ताजा रहेगा, मेरी पत्नी का तीत्व भी अक्षुण्ण रहेगा।"

अजित का कथन सुनकर राजा ने ठहाका लगाकर सा और वोला—

"अजित ! स्त्रियो की माया वड़ी विचित्र है, वे इसी रह पुरुषों को उल्लू वनाया करती है। स्त्रियो का चरित्र देव भी नही जान पाते।"

अजित को कुछ वुरा लगा। प्रत्युत्तर मे राजा साथ विवाद करना ठीक नही समझ इतना ही कहा—

"महाराज ! आपकी वात अपनी जगह ठीक है, पर र स्त्री एक जैसी नही होती। मेरी पत्नी सती ही नही हासती है। मुझे इसका पूरा विश्वास है।"

अजितसेन का यह उत्तर राजा को एक चुनौती
लगा। मित्र हो या शत्रु—अधिकार संपन्न व्यक्ति चु
सहन नहीं कर सकता। राजा ने मन-ही-मन एक यो
बना ली और चुनौती का उत्तर चुनौती में देते हुए क

"अच्छा अजित ! युद्ध से लौटकर हम प्रत्यक्ष
देगे कि इस फूल के न मुरझाने मे भी क्या रहस्य
तब तुम अपनी आँखों से देख लोगे कि हमारी बात
थी या तुम्हारी।"

अजित ने मौन होकर मानो, राजा की चु
स्वीकार कर ली। राजा ने अपनी योजना को क
न्वित किया। अपने चार विश्वस्त आदमी उसने नगर
भेजे और कहा—

"अजितसेन की पत्नी शीलवती का सतीत्व भंग
ऐसा प्रमाण अपने पास रखना कि लौटकर हम अजि
को दिखा सकें।" इस कार्य के सफल होने पर तुम्हें
माँगा इनाम मिलेगा।

अपने कौशल और शक्ति का भरोसा लेकर
व्यक्ति नन्दनपुर आ गए। सच है राजा न किसी
मित्र होता है, न शत्रु—बस, वह 'राजा' होता है।
अवसर हो—वह शत्रुओं को मित्र बना लेता है
उससे सन्धि कर लेता है और क्षण भर में ही मि
साथ शत्रु का-सा व्यवहार करने लग जाता है।
अजितसेन को अपना मित्र बनाकर नन्दनपुर से राजा

अपने साथ लाया था, उसी मित्र अजितसेन की महा-
ी पत्नी का शील भंग कराने की कुचेष्टा उसने की।

× × ×

चारों व्यक्ति पूरी तैयारी के साथ नन्दनपुर आये।
ाक उपायो से वे शीलवती के सतीत्व को भंग करने की
ष्टाएँ करने लगे। उन व्यक्तियों की कुचेष्टा को लक्ष्य
र शीलवती ने उन्हे कई वार लताडा फटकारा। पर वे
रो तो अपने हठ पर तुले हुए थे, जैसे नासमझ वालक
र-वार मना करने पर भी साँप के विल में हाथ डालता
वैसे ही ये चारों अपने किये का परिणाम भोगना
हते थे।

जव चारों वाज नही आये तो शीलवती ने भी मन-
-मन एक योजना वनाली और उसे दो भागों में वाँट
या। पहला भाग वह पति के आने से पहले पूरा करना
ाहती थी और दूसरा पति के आने के वाद।

एक दिन उसने चारो से कहा—

"आप चारों का एक साथ आना ठीक नही। आप
ारों एक-एक करके रात्रि के चारो प्रहरो में नीचे वाले
मरे मे आये।"

चारो ही प्रसन्न थे, क्योकि चारो को लग रहा था कि
मय तो कुछ लगा, पर दाल गल गई।

शीलवती ने एक गहरा गड्ढा खुदवाया। उसके ऊपर
च्चे सूत से वना एक पलंग विछवा दिया। पलंग के

ऊपर एक सुन्दर-सा गलीचा बिछा दिया और स्वयं क
के दरवाजे पर खड़ी होकर उनकी प्रतीक्षा करने लगी।

प्रथम व्यक्ति का स्वागत करते हुये उसने कहा—

"आप चलकर पलंग पर बैठिये। मैं आपके लिये
जलपान लेकर आती हूँ।"

पहला 'खल' पलंग पर बैठते ही धड़ाम से नीचे ग
में गिर गया। दूसरा, तीसरा और चौथा भी इसी प्र
चारो बारी-बारी से एक जगह इकट्ठे हो गये।

कुछ दिन गड्ढे में रहने के बाद चारो को तहखा
बन्द रखा गया। थोड़ा बहुत रूखा-सूखा भोजन-प
उन्हे दिया जाता ताकि वे मरे नही। उस दम घोटू वा
वरण मे चारो का रूप कुरूप हो गया, दाढी-मूँछें-वा
नाखून बढ़ गये और बडे ही विचित्र व अजीब से ल
लगे।

इधर शत्रु को पराजित कर राजा विजय जयघोषों
साथ नगर को लौट आया। अजितसेन जब घर आ
तो शीलवती ने पूरी घटना अजितसेन को सुनाते
कहा—

"स्वामी! अब योजना का दूसरा भाग आप
कीजिए।" एक दिन राज-परिवार को भोजन के
आमंत्रित कीजिए, बाकी सब काम मैं कर लूँगी।"

अजितसेन ने अवसर देखकर राजा को सपरि
भोजन का निमंत्रण दिया। राजा ने सहर्ष स्वीकार कि

ौर ठीक समय पर राज-परिवार भोजन के लिए आया। ानी, मंत्री, युवराज सभी यथासमय पंक्तिवद्ध हो भोजन लिए बैठे। शीलवती ने उन चारों व्यक्तियो की वढ़ी ई जटाओं में फूल लगाये, उनके शरीर पर रक्त चन्दन ा लेप किया और उन्हे भोजन परोसने के लिए नियुक्त रते हुए कडा आदेश दिया कि राजा अथवा राज-परि-ार का कोई व्यक्ति तुमसे कुछ भी पूछे, तुम एकदम मौन हना।

चारों भोजन परोसने लगे। चारों की दाढी मूँछें ौर फूलो से आच्छादित जटायें देखकर राजा ने पूछा—

"अजित! ये यक्ष तुम्हे कहाँ से मिल गये?"

अजित ने वताया—

"राजन्! इन्ही से पूछिये कि ये कहाँ से आये है।"

राजा ने कहा—

"लेकिन भाई, ये तो कुछ वोलते ही नही। गूँगे यक्षों हम क्या पूछे, तुम्ही वताओ, कहाँ से लाये?"

राजा की जिज्ञासा और आश्चर्य को जव कही थाह मिली तो अजितसेन ने वताया—

"राजन्! आपने युद्ध शिविर से जो चार व्यक्ति नगर ो भेजे, वे कहाँ है?"

अव तो राजा शर्म से नीचे गड़ गया। जव उसने ारो को गौर से देखा तो पहचान गया कि ये तो **वही** ारो व्यक्ति है, जिन्हे मैने सती का सतीत्व नष्ट

भेजा था। शर्म के मारे राजा की गर्दन ऊपर नहीं रही थी।

राजा शीलवती के पैरों में गिर पड़ा और अक्षम्य अपराध की क्षमा माँगते हुए बोला—

"बहिन शीलवती ! मुझे क्षमा कर दो। मैंने जैसी सती के लिये यह कुचेष्टा करके महान किया है।"

क्षमाशील महासती शीलवती ने उसी समय राजा कलाई में राखी बाँधकर उसे अपना धर्म का बनाया।

महासती शीलवती की क्षमा, सतीत्व और बुद्धि की सुगन्ध इस भारतभूमि को अभी तक सुगन्धित रही है।

२

हंसराज और वच्छराज

गोदावरी नदी के सन्निकट पैठणपुर नामक एक त्यन्त सुन्दर नगर था। वहाँ की प्राकृतिक सौन्दर्य-पमा दर्शनीय थी। नरवाहन वहाँ का प्रतापी सम्राट् ा। लीलावती उसकी अग्रमहिषी थी। प्रतिभामूर्ति रकेसरी उसका प्रधानमंत्री था। जो अपनी व्युत्पन्न-ति से कठिन से कठिनतर समस्या को भी सुगम रीति से लझा देता था।

एक दिन राजा अपने भव्य राजप्रासाद मे सोया था। से प्रातःकाल एक स्वप्न आया कि मैं कनकपुर नगर में हुँचा हूँ। वहा के राजा कनकप्रभ की हंसावली नामक क पुत्री है। जो रूप मे अप्सरा के समान है। उसके ाथ मेरा पाणिग्रहण हुआ, मैं उसके साथ विविध प्रकार े क्रीड़ा-कर रहा हूँ। राजा स्वप्न देखने में इतना ल्लीन हो गया कि सूर्योदय होने का भी उसे भान न हा। एक प्रहर दिन आजाने पर भी राजा न उठा। ह तो स्वप्न संसार का आनन्द लूट रहा था।

राजदरबार मे राजा के अतिरिक्त प्रधानमंत्री आदि भी सदस्यगण उपस्थित हो गये। प्रधानमंत्री ने पता

लगाया कि महाराज अभी तक सोये हुए है। सो
कारण जानने के लिए वह राजप्रासाद में पहुंचा
प्रयत्न कर राजा को उठाया। उठते ही राजा प्रधान-मं
अत्यधिक कुपित हो गया। प्रधानमंत्री को मारने के
उसने म्यान मे से चमचमाती हुई तलवार निकाली
तूने मेरे स्वप्न को क्यो भंग कर दिया। मै कनकपुर
महान सुन्दरी राजकन्या हसावली के साथ आनन्द क्री
कर रहा था। तेने उस आनन्द मे क्यो विघ्न उप
किया? तेने मेरे से हंसावली छीनली है अतः मैं अब
जीवित नही छोड़ सकता।

प्रधानमंत्री ने निवेदन किया—राजन्! मुझे ज्ञा
नही था कि आप स्वप्न देख रहे है। स्वप्न में भी हं
वली आपको इतना आनन्द दे रही थी, यदि उसके सा
मैं आपका विवाह करा दू तो आपको जीवन
कितना आनन्द प्राप्त होगा।

राजा ने ललचाई आँखो से प्रधानमंत्री को देखा
क्या तुम मेरे स्वप्न को साकार कर सकते हो? यदि
दोगे तो मैं विराट् वैभव प्रदान करूंगा, और जी
भर तुम्हारे उपकार को नही भूलूंगा। मंत्री—राजन
मैं निश्चित रूप से हंसावली के साथ आपका पाणि-ग्रह
करा दूंगा, किन्तु इस काय में कुछ समय लगेगा।

राजा ने विशेष उत्कंठा के साथ कहा—मैं तुम्हें
कार्य के लिए छह महीने का समय देना हूं, इस अवधि

हे यह कार्य सम्पन्न करना होगा। यदि इस अवधि में कार्य नही कर सके तो तुम्हे मृत्यु दण्ड दिया जायगा।

प्रधानमंत्री ने राजा के प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार र लिया। वह राजमहल से अपने घर आया किंतु उसके मने एक गम्भीर समस्या थी कि कनकपुर कहाँ पर ? किस दिशा में है ? वहां का राजा कौन है ? सकी हंसावली पुत्री है या नही, यदि है तो वह विवाहित या अविवाहित है ? आदि प्रश्नो के समाधान के लिए सने पैठणपुर नगर के द्वारों पर अपने विश्वस्त व्यक्ति ायुक्त किये कि जो भी अतिथि आये उसका प्रथम स्वा-त करो और फिर कनकपुर नगर के सम्बन्ध में जान-ारी प्राप्त करो। जिसे कनकपुर नगर के सम्बन्ध में ानकारी हो उसे मेरे पास उपस्थित करो।

अनुचरो ने प्रधानमंत्री के आदेश का पालन किया। क महिना पूर्ण हो गया पर किसी से भी कनकपुर नगर सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त न हो सकी तो प्रधानमंत्री हृदय की धडकन बढने लगी। जब तक कनकपुर के म्बन्ध मे जानकारी न हो वहाँ तक अगला कदम कैसे ठाया जा सकता था।

एक महिने के पश्चात् एक बहुत बडे व्यापारी ने नगर में प्रवेश किया। उसे कनकपुर के सम्बन्ध में जान-कारी थी, अतः अनुचर उसे प्रधानमंत्री के पास ले गये। उन श्रेष्ठी ने प्रधानमंत्री को बताया कि कनकपुर यहाँ से काफी दूर है। समुद्र पार कर वहाँ पर पहुँचना पडता

है। मैं एक बार स्वयं कनकपुर गया था। वहां के कनकप्रभ को मैं उपहार देने पहुँचा उस समय उसकी हंसावली कार्य विशेष से वहां पर आ गई थी। उसके व भव्य रूप को देखकर मैं चकित रह गया। मैं देशों में घूमा हूँ पर उसके जैसा अद्भुत रूप मैंने दिन तक कही भी नही दीखा। उसके रूप के उर्वशी भी पानी भरती है।

प्रधानमंत्री ने व्यापारी का प्रेम भरा स्वागत और पूछा क्या आप मेरे साथ कनकपुर चल सकते व्यापारी ने कहा, अवश्य ही।

राज्य की सुव्यवस्था कर राजा व प्रधानमंत्री पारी के साथ कनकपुर की ओर प्रस्थित हुए। मार्ग व समुद्र को जहाज से पार कर वे तीनो कन पहुँचे। व्यापारी राजा और प्रधानमंत्री को कनकपुर कर अपने कार्य के लिए आगे चल दिया।

राजा और प्रधानमंत्री दोनो ने शहर को देखने दृष्टि से ज्यों ही प्रवेश किया त्योंही एक मालिन ने माला समर्पित की। प्रधानमंत्री ने इसे बहुत ही शकुन समझा और मालिन के हाथ मे एक बहुमू मुद्रिका को देखकर बाग-बाग हो गई। उसने अपने म पर दोनो अतिथियों को ठहरने की प्रार्थना की राजा ने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

सन्ध्या के समय राजा और प्रधानमंत्री दोनों में परिभ्रमणार्थ जाया करते थे। एक दिन मालिन

ा—मेरा आप से नम्र निवेदन है कि आप नगर में
ने के लिए न पधारे तो अधिक श्रेयस्कर है क्योंकि
की राजकुमारी हंसावली के अन्तर्मानस में पुरुष
ति के प्रति अत्यन्त घृणा की भावना है। वह कालिका
ता की उपासिका है, अष्टमी, चतुर्दशी और अमावस्या
दिन वह नंगी तलवार लेकर राजमहल से निकलती है
र बीच में यदि कोई पुरुष मिल जाता है तो उसे मार-
र उसका भोग चढाती है। यहाँ तक कि इन दिनों में
स्वयं राजा और प्रधानमंत्री भी अपने मकान से
हर नही निकलते है।"

मालिन की बात सुनकर राजा के मन मे भय का
चार हो गया। उसने धीरे से प्रधानमंत्री को कहा—
सी हंसावली मुझे नहीं चाहिए। अपन तो सकुशल अपने
ज्य को लौट चलें।

प्रधानमंत्री—राजन्! आप भयभीत न बने। मैने
आपको वचन दिया है, उसकी पूर्ति मै करूंगा। मैं
पनी बुद्धि वैभव से इस असाध्य कार्य को भी साध्य कर
गा। आप आनन्द से यही पर विराजे और मैं अकेला
कार्य सिद्धि करने के लिए जाता हूँ।

प्रधानमंत्री सीधा ही उस कालिका मन्दिर मैं पहुँचा
हा पर राजकुमारी हसावली आया करती थी। प्रधान-
त्री ने सर्वप्रथम कालिका माता को नमस्कार कर
नवेदन किया माताजी! मैं आपकी शरण मे आया
। मेरे पर ऐसी कृपा करो जिससे हंसावली के असंभा-

वित कार्य को मैं संभावित कर दूं । एकाग्र चित्त से उसं
स्तुति की और फिर मूर्ति के पीछे छिपकर बैठ गया।

सन्ध्या के समय अपनी सहेलियों के साथ हंसाव
मन्दिर मे पहुँची। उसके हाथ मे तलवार चमक र
थी। वह मूर्ति के सामने नर-बली देना चाहती थी कि
प्रधानमंत्री ने गंभीर गर्जना करते हुए कहा—हंसावली
सावधान होजा। यदि तू मेरे सन्निकट आगेगी तो मैं तु
इसी क्षण परलोक पहुँचा दूंगी।

गंभीर गर्जना सुनकर हंसावली पके पान की तर
कांपने लगी। उसे यह समझ में नही आ रहा था कि
उसने आज ऐसा कौन-सा अपराध कर दिया जिस
।ता।ज इतनी रुष्ट हो गई। उसने नम्रतापूर्वक नि
दन करते हुए कहा—माताजी। मै प्रतिदिन आपकी भ
करती हूँ कभी भी आप मेरे पर नाराज नही हुई, स
ही आपकी मेरे पर अपार कृपा दृष्टि रही है पर आ
आपके नाराजगी का कारण मैं समझ नही सकी।

उसी समय पुनः आवाज आई—तू प्रतिदिन निरपरा
मानवों को हत्या करती है, मैं उन तेरे क्रूर पापकृत्य
देखकर ऊब चुकी हूँ। तुझे पता है, इस पाप का प
क्या होगा ? अब बता तू यह नर-हत्या क्यों करती है

हंसावली ने निवेदन किया—माताजी ! कुछ
के पूर्व एक पक्षी-युगल को देख कर मुझे अपने पूर्व
की स्मृति हो आई थी। मैं पूर्व भव में पक्षिणी थी, अ

य पक्षी के साथ आनन्दपूर्वक उद्यान में रहती थी। क वार मैंने दो अण्डे दिये और इधर आग लग गई। ने आग को वुझाने के लिए पति को पानी लाने के लिए जा, पर वह लौट कर नही आया और मैं अपने दोनो ण्डों के साथ उस आग में जलकर भस्म हो गई। मरते मय मेरे मन मे यह भावना रही कि पुरुष कितना स्वार्थी जो स्वय वच जाता है और दूसरे को जला देता है। वे ी संस्कार मेरे मन मे आज भी विद्यमान है जिसके ारण मेरे मन में पुरुप जाति के प्रति घृणा की भावना है और पुरुष को देखते ही उसे मारने के लिए मैं तत्पर ो जाती हूँ।

पुनः आवाज हुई—हंसावली ! तू भूल मे है। तेरे पति ने जो कार्य किया उसका तुझे परिज्ञान नही है। वह शीघ्र ी सरोवर से पानी लेकर आया। किन्तु तव तक तू आग ें जल चुकी थी अतः तेरे प्रेम में दीवाना बनकर वह ी उसी आग में कूद पडा और तेरे लिए उसने अपने नमोल प्राण न्योछावर कर दिये।"

हंसावली ने जब यह सुना तो उसे नई रोशनी प्राप्त ई। उसने अपने अपराध की क्षमा मांगते हुए कहा—ाताजी ! अगली घटना का मुझे पता नहीं था। जिससे ह भयकर अपराध हो गया। आज से यह प्रतिज्ञा ग्रहण रती हूँ कि अब मैं किसी को नही मारूँगी। प्रतिज्ञा हण कर हंसावली अपने महलों में लौट आई।

प्रधानमंत्री मूर्ति के पीछे से निकला, और नमस्कार

कर राजा के पास लौट आया। आज उसे अपार प्रसन्न
थी, क्योंकि उसे हंसावली के जीवन का गुप्त रहस्य मि
चुका था।

प्रधानमंत्री कुशल चित्रकार भी था। उसने बहुत
सुन्दर चित्र बनाये जिसे देखकर दर्शक चित्रलिखित से
जाते थे। हसावली की दासियो ने जब वे चित्र देखे
आश्चर्य चकित हो गई। उन्होंने राजकुमारी के सा
उन चित्रों की प्रशंसा करते हुए कहा—कि ऐसा अद
चित्रकार हमारे नगर में आया। जिसके चित्र मुंह बो
हैं। हंसावली ने उसी समय दासियो के द्वारा
को अपने पास बुलाया और सारे चित्र उसने खरीद लि
प्रधानमन्त्री से उसने कहा—तुम मेरे महल मे ऐसा
बना दो जो अद्वितीय हो।

प्रधानमन्त्री ने उसके पूर्व भव के जीवन को चि
करते हुए—पक्षी, पक्षिणी, अण्डे; उद्यान, वृक्ष, औ
सरोवर, दो अण्डों के साथ पक्षिणी का अग्नि मे जल
और पीछे से पक्षी का आना उसके विरह मे व्यथित हो
आग में कूद पड़ना, आदि दृश्य इतने कलापूर्ण ढंग
चित्रित किये कि हंसावली देखते ही स्तब्ध रह गई।
मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर पड़ी।

दासियाँ दौड़ती हुई आई। और आपस में एक
से कहने लगी कि लगता है कि चित्रकार ने ऐसा
कर दिया है जिससे हमारी स्वामिनी मूर्च्छित हो गई
दूसरे ने कहा—नहीं, माताजी रुष्ट हो गई।

कुछ समय के पश्चात् हंसावली स्वयं उठकर बैठ
ई। उसने चित्रकार को अपने सन्निकट बुलाकर कहा—
म्हारा यह चित्र वडा ही अद्भुत है। इस चित्र में तुमने
रा पूर्वभव ही चित्रित कर दिया है। यदि तुम मेरे पूर्व-
व के पति को मिला सको तो मैं तुम्हारा उपकार जीवन
र नही भूलूगी। मैंने अपने मन मे आज यह दृढ निश्चय
र लिया कि यदि मैं विवाह करूंगी तो उसी के साथ
रूंगी। यदि वह प्राप्त न होगा तो मैं जीवन भर ब्रह्म-
ारिणी ही रहूँगी। हाय ! क्या तुम उससे मुझे मिला
कोगे।

चित्रकार ने कुछ समय आँखें मूँद कर चिन्तन किया
ीर बाद में उसने कहा—राजकुमारी ! तुम्हारा पूर्वभव
का पति मरकर पैठनपुर का नरवाहन नामक राजा
आ है, जो महान् पराक्रमी है, यदि तेरी भावना हो तो
उसे यहाँ पर ला सकता हूँ।

हा, हा चित्रकार तुम उन्हे शीघ्र लाओ, मैं उन्ही के
ाथ विवाह करूँगी।

चित्रकार—वह स्थान यहाँ से काफी दूर है अतः लाने
ं कम से कम एक महीने का समय चाहिए ही। इतनी
र से बारात लाना संभव नही हो सकेगा अतः मैं अकेले
ी राजा को ले आऊँगा।

राजकुमारी आप शीघ्र जावें। मैं यहाँ पर आपकी
अपलक प्रतीक्षा करती रहूँगी।

प्रधानमंत्री राजमहलों से मालिन के वहाँ पर आ
और उसने विस्तार के साथ राजा को सारी घटना क
दी। दोनो ही मालिन के वहाँ पर गुप्त रूप से रहने लगे
सत्ताइस दिन व्यतीत हो गये। हंसावली पलक पां
बिछाकर उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। अट्ठाइसवें दि
प्रधानमन्त्री राजा के साथ राजमहलो में पहुँचा। उ
राजकुमारी को राजा का परिचय दिया। राजा के दि
रूप और शौर्य के वर्णन को सुनकर राजकुमारी मुग्ध
गई और राजा भी उसके दिव्य रूप को चित्रलिखित
देखता रह गया।

राजा कनकप्रभ ने अपनी पुत्री हंसावली का पाणि
ग्रहण राजा नरवाहन के साथ कर दिया। राजा नरवाह
ने प्रधानमन्त्री नरकेशरी को दिल खोलकर पुरस्
दिया। और रानी के साथ अपने राज्य में आ गया
हंसावलो के क्रमशः दो पुत्र हुए हंसराज और वच्छराज
दोनों का रूप बहुत ही सुन्दर था और दोनो की बुद्धि
बहुत ही तीक्ष्ण थी। दोनो भाइयो में राम-लक्मण
भांति प्रेम था। दोनो ने कलाचार्य के पास बहत्तर कल
सीखी। एक दिन सन्ध्या के समय दोनो भाई राजमहल
प्राङ्गण मे गेंद खेल रहे थे। गेंद उछलकर महाग
लीलावती के महल में चली गई। हंसराज अपनी गेंद
के लिए अपनी सौतेली माँ लीलावती के महल मे पहुँ
लीलावती ने हंसराज के सुन्दर सलौने रूप को देखा
वह उस पर मुग्ध हो गई। उसने गेंद अपने हाथ में

रानी और हसराज से कहा—मैं तेरे रूप और उभरते हुए यौवन को देखकर मुग्ध हो चुकी हूँ अत. मैं अपना सर्वस्व तेरे चरणो में न्यौछावर करना चाहती हूँ।

अपनी माँ के मुँह से ये शव्द सुनकर हंसराज ठगा-सा रह गया। उसने स्पष्ट शब्दो मे कहा—माताजी ! आप पुत्र के सामने क्या वोल रही है, जरा ध्यान भी है या नही। मैं स्वप्न मे भी अपनी माँ के साथ ऐसी वात कभी नही कर सकता और उसने माँ के हाथ से अपनी गेंद छीन कर ले ली और चट से महल के नीचे उतर आया।

लीलावती ने इसे अपना भयंकर अपमान समझा। उसने सोचा 'हाथ भी जले और होले भी खाने को न मिले।' हंसराज से प्रतिशोध लेने को भावना से उसने अपने पहनने के वस्त्र फाड दिये। अपने ही हाथो से अपने शरीर को खरोच डाला और एकान्त में जाकर औंधे मुँह लेट गई। जव रात को राजा महलों मे पहुँचा उसने रानी की यह विचित्र स्थिति देखी और पूछा—क्या वात है।

रानी ने आंखों से आँसू वहाते हुए कहा—आपके पुत्र हंसराज ने अपनी वासना की पूर्ति के लिए मेरे सामने प्रस्ताव रखा जव मैंने उसके प्रस्ताव को ठुकरा दिया तो उसने वलात्कार करने के लिए मेरे पर प्रहार किया। मैं उसकी उद्दण्डता को अव सहन नही कर सकती। आज उसने अपनी माँ के साथ इस प्रकार का व्यवहार किया तो कल दूसरो के साथ करेगा अतः आपको अपने लाडलो से सावधान हो जाना चाहिए।

राजा रानी लीलावती के त्रिया-चरित्र को न सम-
सका। उसका खून खौल उठा। उसने उसी समय प्रधान
मन्त्री नरकेसरी को बुलाया और अपने पुत्रों की कार-
करतूत बताते हुए कहा अभी हंसराज और वच्छराज
दोनों भाइयों को भयंकर जंगल में ले जाओ और मार
दो। प्रधानमन्त्री ने राजा को समझाने का प्रयास कि-
पर राजा ने उसकी एक भी न सुनी।

प्रधानमन्त्री हंसराज और वच्छराज दोनों को लेकर
भयानक जंगल में पहुँचा और स्नेह से दोनों के सिर पर
हाथ फेरते हुए कहा—मुझे दृढ विश्वास है कि तुम क-
भी ऐसा कार्य नहीं कर सकते पर तुम्हारी सौतेली माँ
राजा को अपने चंगुल में फँसा दिया है। राजा ने तु-
दोनों को मारने का आदेश दिया है पर मैं तुम्हें जी-
दान देता हूँ। जब तुम्हारा भाग्य चमकेगा तब मैं तुम्हा
सेवा का लाभ ले सकूंगा। प्रधानमन्त्री ने बहुमूल्य वा
रत्न उनको दिये और दो बढिया घोड़े भी। साथ ही
आदेश दिया कि इन घोड़ों पर बैठकर तुम दूर विदेश
चले जाओ। दोनों भाईयों ने प्रधानमन्त्री को नमस्
किया और घोडे पर बैठकर चल दिये। प्रधानमन्त्री
राजा को सूचित किया कि मैंने दोनों को मार दिया।
लीलावती ने जब यह सुना तो वह हर्ष से नाच उ-
उसने गुप्तरूप से प्रधानमन्त्री को अपने पास बुला
पूछा—जब तुमने हंसराज को मारा था तब उसने
समय कुछ कहा तो नहीं।

प्रधानमन्त्री बहुत ही चतुर था उसने कहा कि वह कह रहा था कि यदि मैंने लीलावती के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया होता तो आज मेरी यह स्थिति न होती। यह सुनते ही महारानी के चेहरे पर भय की रेखाएँ चमक उठी। प्रधानमन्त्री ने उसे देखा और उसे समझने मे देर न लगी कि वस्तुतः गलती किधर से हुई। वह धीरे से महारानीजी की अनुमति प्राप्त कर चल दिया।

हंसराज और वच्छराज दोनों भाई घोडे पर बैठकर एक जंगल से दूसरे जंगल को पार करते हुए आगे बढ रहे थे। दोनों अपने भावी जीवन के सम्बन्ध मे सोच रहे थे। हंसराज को प्यास सताने लगी। उसने अपने भाई से कहा—भाई! कहीं पर पानी हो तो लाओ न! बिना पानी पिये अब मेरे से एक कदम भी आगे नही बढ़ा जायेगा।

वच्छराज ने पानी की तलाश मे घोडे को आगे बढाया और हसराज वृक्ष के नीचे लेट गया। थका हुआ होने से सोते ही उसे गहरी नींद आ गई। बिल मे से एक भयंकर विषधर साप निकला और उसने हंसराज को डस लिया। जिससे उसके सारे शरीर मे जहर व्याप्त हो गया। उसके हृदय और नब्ज की गति रुक गई।

वच्छराज पानी लेकर लौटा, पर भाई को मरा हुआ देखकर उसके हृदय को गहरा धक्का लगा। वह सुबक-सुबक कर रोने लगा। भाई! इस भयानक जंगल मे मुझे

अकेला छोड़कर कहाँ चल वसा ! अरे ! सर्प ! तू वडा निर्दयी निकला, तेने असमय मे मेरे प्यारे भाई के प्राण लिये ।

कुछ समय के पश्चात् उसने सोचा—भाई मर गया है। अव मुझे उसकी अन्त्येष्ठि क्रिया करनी है। इस अन्त्येष्ठि चन्दन की लकडी से करनी चाहिए अत जंगल में इधर-उधर चन्दन की लकडियाँ तलाश करता रहा, पर कही पर भी मिली नही अतः वह चन्दन लकड़ियाँ लेने के लिए शहर की ओर प्रस्थित हुआ। भाई के शव को उसने एक वृक्ष पर वाध दिया कि कही वन पशु न खा ले और स्वयं दोनो घोडो को व वारह रत्न को लेकर चल दिया।

वच्छराज कुन्ति नगरी मे पहुँचा। कुन्ति नगरी मे वहुत वडा धूर्त एक मुम्मण सेठ रहता था। जिसने हजारों व्यक्तियो को जाल में फँसाकर करोड़ों की सम्पत्ति इकट्ठी की थी। उसने वच्छराज को देखा। विदेशी व्यक्ति जानकर प्रेम से अपने पास बुलाया : कहिए, आपको किस चीज की आवश्यकता है ? वच्छराज ने नगर का प्रमुख व्यक्ति समझ कर वारह वहुमूल्य रत्न और दो घोड़े देते हुए कहा—इन्हे आप लीजिए और मुझे इस समय चन्दन की लकडियाँ दे दीजिए। चन्दन की लकडियों का मूल्य लकड़ियाँ पुनः लौटाकर मैं अपने रत्न और घोड़े वापिस ले जाऊंगा। मुम्मण ने वच्छराज की शर्त को स्वी

स्वीकार कर लिया और कहा कि आप किञ्चित्मात्र भी चिन्ता न करें जव भी चाहें रत्न और घोडे ले जा सकते है।

मुम्मण ने पैनी दृष्टि से रत्नो को देखा। उसका मन रत्नो को हजम करने के लिए ललचा गया।

चन्दन की लकड़ियाँ लेकर वच्छराज उसी वृक्ष के पास पहुँचा, जहाँ हंसराज को वाँध रखा था।

जिस वृक्ष पर हंसराज को वाधा था उस वृक्ष पर रुड पक्षी ने आकर विश्राम लिया। उसके मुँह की लार सराज के शरीर पर गिरी जिससे हंसराज का जहर तर गया। उसे ज्यो ही होश आया त्यो ही अपने को क्ष से वंधा हुआ देखा तो उसके आश्चर्य का पार न हा। वच्छराज आसपास मे कही भी दिखाई नही दिया। सराज ने धीरे से अपनी रस्सी को काटा। सन्निकट के रोवर पर जाकर उसने पानी पिया और भाई की तलाश वह जंगल में इधर से उधर भटकने लगा। किन्तु कही र भी भाई न मिला। उसे एक तपस्वी ज्ञानी सन्त एक क्ष के नीचे ध्यान मुद्रा मे खडे दिखाई दिये। उसने मुनि-जि को नमस्कार किया। जव मुनि ध्यान से निवृत्त हुए व उसने मुनिराज से पूछा—भगवन्! मेरा भाई वच्छ-राज मुझे पुनः कव मिलेगा? और कहाँ मिलेगा।

मुनिराज ने कहा—चिन्ता न कर! तेरा भाई पानी लिए गया था, वाद में तुझे सर्प ने काट खाया। जिससे त समझकर वह चन्दन की लकडियो लेने गया। पीछे

से गरुड़ के कारण तू जहर से मुक्त हुआ, अब व
छह माह के पश्चात् कुन्ती नगरी में मिलेगा। ह
मुनि को नमस्कार कर कुन्तीनगरी की ओर

वच्छराज चन्दन की लकड़ियों के गट्ठर को लेकर
वृक्ष के पास पहुँचा जहां पर उसने अपने भाई को
रखा था पर उसे बंधा हुआ न देखकर सोचने ल
क्या भाई का अग्नि-संस्कार करना भी मेरे भाग्य मे
है। क्या मेरे भाई को कोई हिंसक पशु उठाकर ले
है या खा गया है ? उसने वृक्ष के नीचे आसपास हं
के पद चिन्हों को देखा तो उसका मन प्रमुदित हो ग
उसने सोचा भाग्ययोग से यहाँ पर कोई सिद्ध पुरुष
होगा उसने कृपाकर मेरे भाई को जीवित कर दि
वह भाई के पदचिन्हो पर चला किन्तु सरोवर पर
चने पर आगे भाई के पद चिन्हों का पता न लग सक

जीवन आशा और निराशा के झूले मे झूलता
कभी जीवन में आशा की प्रधानता होती है तो
निराशा की। वच्छराज चन्दन की लकड़ियों का ग
को लेकर उस मुम्मण सेठ के पास पहुँचा। मुम्मण
उसे देखकर पहले तो घबरा गया, पर उसने सोचा
ऐसा उपाय करूँ जिससे रत्न भी न देने पड़ें और
खाली हाथ लौट जाए।

उसने प्रेम से वच्छराज से कहा—आप लकड़ियां
डाल दीजिए। मैंने आपके रत्न तिजोरी मे रखे है

रात्रि मे निकालूंगा और आपको प्रातःकाल दे दूंगा, अभी आप तवेले मे बंधे हुए घोडो को ले जाइये ।

वच्छराज मायावी मुम्मण की बात न पहचान सका । उसने तवेले मे जाकर घोड़े खोले । मुम्मण ने होहल्ला मचाया कि देखिए दिन दहाडे यह चोर मेरे कीमती घोडे चुराकर ले जा रहा है । जरा आओ और इसे पकड लो । सैकडो व्यक्ति इकट्ठे हो गये । वच्छराज को रंगे हाथों पकड लिया गया । कोतवाल वच्छराज को पकडकर राज सभा मे ले गया ।

राजा भी मुम्मण का सम्मान करता था । राजा को सम्मान देकर मुम्मण ने निवेदन किया, राजन् ! आप जैसे न्यायप्रिय शासक के रहते नगर मे, और वह भी बाजार मे दिन मे इस प्रकार चोरी हो यह कहाँ तक उचित है ? इस दुष्ट चोर को तो कडा दण्ड मिलना चाहिए ।

राजा ने कोतवाल को आदेश दिया कि अभी-अभी इस तस्करराज को जंगल में ले जाओ और तलवार से इसके दो टुकडे कर दो, तभी इसे मालूम पडेगा कि वस्तुतः चोरी करने का क्या फल होता है ।

वच्छराज अपने भाग्य पर चिन्तन कर रहा था । राज्य छूटा ! भाई छूटा । इस दुष्ट ने मेरे घोडे व रत्न लेकर मेरे पर चोरी का अभियोग लगाया और मृत्युदण्ड दिलवाया । मैं क्यो चिन्ता करूँ, जो भाग्य मे लिखा होगा वह तो अवश्य ही होकर रहेगा ।

कोतवाल वच्छराज को लेकर अपने घर आय। कोतवाल की पत्नी ने वच्छराज के तेजस्वी व सुकुमा चेहरे को देखा तो उसका कोमल मानस दया से द्रवि हो उठा। उसने कहा - पतिदेव ! यह युवक चोर न है। इसका भव्य चेहरा ही बता रहा है कि यह खानदानी युवक है। मेरे कोई पुत्र नही है अतः आप मुझे दे दो, मैं इसका पुत्र की तरह पालन करूंगी। छि कर अपने पास रखूंगी।

पत्नी की बात कोतवाल को जंच गई। उसने उ बंधन खोल दिये और पुत्र की तरह भोंयरे मे छिपा रख लिया और राजा को सूचना करदी कि हमने उस मार दिया है। मुम्मण ने जब यह सुना तो उसे आ प्रसन्नता हुई।

मुम्मण के पुष्पदन्त नामक एक लड़का था। जो पि की तरह ही दुष्ट प्रकृति का व ठगोरा था। एक वह अठारह नौकाओं में सामान लादकर व्यापार के विदेश जा रहा था। उसने नाविकों को आदेश दिय सभी नौकाएं चलाएं। पर नाविकों के अत्यधिक प्र करने पर भी नौकाएं नही चली। मुम्मण ने साम कला निष्णात व्यक्ति को बुलाकर इसका कारण पू उसने कहा—तुमने किसी की धरोहर रखकर ल नही है। जिसके कारण ये जहाज स्तम्भित हो ग जब तक उस धरोहर को पुनः न लौटाओगे त जहाज चल नही सकते।

मुम्मण ने पूछा—दूसरा भी कोई उपाय है या नही ?

उसने कहा—जिसकी धरोहर तुम्हारे पास मे है यदि ह व्यक्ति तुम्हारे जहाज में वैठ जाय तो भी ये जहाज ल सकते है।

मुम्मण का चेहरा पके पान की तरह पीला पड या। वह किंकर्तव्यविमूढ हो गया। उसने धीरे से सामुद्रिक को कहा—आपका कथन पूर्ण सत्य है पर एक गंभीर मस्या है कि जिसकी धरोहर थी वह तो मर चुका है मे धरोहर कैसे लौटाई जा सकती है और वह जहाज माथ भी कैसे चल सकता है।

सामुद्रिक ने अपनी गणनाकर वताया कि जिसकी मने धरोहर रखी है वह मरा नही है। वह अभी ीवित है।

मुम्मण के आश्चर्य का पार न रहा। क्या यह सत्य । यदि वह जीवित है तो अभी कहां पर है ?

सामुद्रिक ने कहा—कोतवाल ने उसे मारा नही है। से पुत्र वनाकर अपने घर मे छिपाकर रखा है।

मुम्मण सोचने लगा कि ऐसा उपाय करू जिससे रा कार्य अच्छी तरह से हो जाये। सामुद्रिक को योग्य रस्कार देकर उसने विदा किया और स्वयं राजा के पास हुँचा। राजा ने उसके आने का कारण जानना चाहा।

मुम्मण ने मुंह मटकाते हुए कहा—राजन् ! कुछ दिनो के पूर्व आपश्री ने जिस तस्कर को मारने का आदेश

दिया था परन्तु आपश्री की आज्ञा की अवहेलना क
कोतवाल ने उसे अपने यहाँ पुत्र के समान छिपाकर
लिया है किन्तु मेरा आपश्री से नम्र निवेदन है कि अ
कोतवाल को कुछ भी न फरमाये नही तो मेरा शहर
रह पाना कठिन हो जायेगा। बन्दरगाह पर मेरे अठा
जहाज रुके हुए है। सामुद्रिक ने मुझे बताया है कि
तस्कर यदि जहाज में साथ जायेगा तो जहाज चल स
है अतः आप उस तस्कर को कोतवाल से मुझे दि
दीजिये ताकि मैं उसे दास के रूप अपने पास मे रखूंग

राजा ने उसी समय कोतवाल को बुलाया अ
छुपाये हुए तस्कर को मुम्मण के हाथ सौपने का आ
दिया। वच्छराज के मधुर स्वभाव पर कोतवाल मुग्ध थ
वह उसे देना नही चाहता था, परन्तु राजाज्ञा भी ट
नही सकता था। अतः विवश होकर उसने वच्छराज
मुम्मण सेठ को सुपर्द कर दिया

मुम्मण का कार्य भी हो गया और उसकी कलई
नही खुली। वच्छराज ने ज्यों ही जहाज मे पैर र
जहाज चलने लगे। पुष्पदत्त वच्छराज को दास की त
अपने पास रखने लगा। कुछ दिनो मे जहाज कनका
पहुँचे। वच्छराज के सौजन्यपूर्ण सद्व्यवहार से पुष्प
भी अत्यधिक प्रसन्न था। पुष्पदत्त वच्छराज के साथ ब
मूल्य उपहार लेकर राजा कनकसिंह को राज सभा
पहुँचा। उपहार प्रदान किया। राजा ने अपने नगर

से सहर्ष व्यापार की अनुमति प्रदान कर दी। पुष्पदत्त
हा पर व्यापार करने लगा।

पुष्पदत्त के साथ वच्छराज भी समय-समय पर राज-
भा में जाता था। राजा कनकसिंह के एक पुत्री थी।
ासका रूप अनूप था। उसका नाम चित्रलेखा था, उसने
च्छराज को देखा तो वह उसके भव्य रूप पर मुग्ध हो
ई। उसने अपनी दासी के द्वारा वच्छराज को अपने
ास में बुलाया और विवाह का प्रस्ताव रखा।

वच्छराज ने कहा—आप जरा गहराई से सोचिए। मैं
ष्पदत्त व्यापारी का एक दास हूँ और आप राजकन्या है
त. आपका और मेरा विवाह कैसे संभव हो सकेगा।

कन्या ने कहा—आप इसकी चिन्ता न करें। मैंने
पने मन मे यह दृढ निश्चय कर लिया है कि यदि मैं
ववाह करूंगी तो आपके साथ करूंगी, नही तो
ाजीवन कुंआरी रहूँगी। अपने जीवन को समाप्त
र दूंगी किन्तु किसी अन्य व्यक्ति को समर्पित नही
होऊंगी।

वच्छराज ने कहा—मुझे किसी भी प्रकार का एत-
ाज नही है। राजकन्या ने माता से मंत्रणा की। महा-
ानी ने राजा से कहकर शीघ्र ही स्वयंवर की रचना
रवाई। उसमे पुष्पदत्त को भी निमंत्रण दिया। पुष्पदत्त
च्छराज के साथ स्वयंवर मण्डप मे पहुँचा। चित्रलेखा
ूलो की माला लेकर मण्डप में उपस्थित हुई। वह सभी
ो पार करती हुई पुष्पदत्त के पास पहुँची। पुष्पदत्त उसे

देखकर हर्ष विभोर हो उठा। मन ही मन में अपने भा
की सराहना करने लगा, किन्तु चित्रलेखा ने वच्छराज
गले में माला डाली तो उसकी आशा निराशा में बदल ग

पुष्पदत्त नही चाहता था कि एक सर्वाङ्ग सुन्
राजकन्या अपने दास के साथ विवाह करे। अतः उ
राजा से कहा राजन्! मेरा दास आपका दामाद हो
मुझे अच्छा नही लगा - राजा ने व अन्य राजकुमार
भी कहा कि राजकन्या ने वर को चुनने में भूल क
है, अब भी उसका परिष्कार कर दिया जाय कि
राजकन्या ने किसी के भी प्रस्ताव को स्वीकार नही कि
अतः राजा ने कुपित होकर कहा—मैं तुम्हारा मुंह दे
नहीं चाहता अतः नगर छोडकर नदी के किनारे झौ
बनाकर रहो।"

वच्छराज और चित्रलेखा दोनों नदी के किनारे
झौपड़ी बनाकर रहने लगे। महारानी गुप्त रूप से भे
सामग्री आदि प्रेषित करती। वच्छराज ने राजकु
से कहा—तू व्यर्थ ही मेरे कारण कष्ट पा रही है अत
अन्य किसी राजकुमार के साथ विवाह कर अपने जं
को सुखी बना सकती है।

राजकुमारी ने दृढता के कहा—मैं आपको वरण
चुकी हूँ, चाहे सुख हो, चाहे दु ख हो किन्तु मैं स्वप्न
अन्य पुरुष की इच्छा नही कर सकती मैं तो छाया
तरह सदा आपके साथ रहूँगी।

राजा कनकसिंह को अत्यधिक दुःख हुआ कि उ

ाडकी ने एक दासपुत्र को अपना जीवन साथी चुना है
ातः कोई उपाय कर उसे मार देना चाहिए। राजा ने
ार पहलवानो को बुलाया और आदेश दिया कि वच्छराज
; शरीर की मालिश करो, और अवसर देखकर उसे मार
ना क्योकि मैं ऐसे दामाद को पसन्द नही करता जिससे
ारी अपकीर्ति हो ।

चारो मल्ल वच्छराज की शुश्रूषा के लिए कुटिया में
हुँचे । वच्छराज राजा की भावना को भाँप गया । चारो
ल मर्दन करने लगे । मर्दन करते हुए चारो ने एक दूसरे
ो संकेत किया । वच्छराज ने उसी समय पैर की मालिश
रने वाले की छाती मे ऐसी कसकर लात मारी जिससे
ा दूर जाकर गिर पडे । मुँह से खून निकल आया ।

चारो मल्लो ने जाकर राजा से निवेदन किया कि
ाजन् ! वह तो इतना वीर है कि हम वडी कठिनता से
ापने प्राण वचा पाये है। हम अव कभी भी उसके
ास नही जायेंगे ।

राजा ने दूसरे दिन वहुत ही प्रेम से वच्छराज को
अपने पास वुलाया और कहा--आज अपन दोनो घूमने के
लिए चलें । राजा स्वयं एक घोड़े पर वैठा और दूसरे
ोडे पर वच्छराज को वैठने के लिए कहा । वह घोड़ा
वक्रगति वाला था । उस पर ज्योही कोई सवार वैठता
योही वह चारो पैरो से उछलता, जिससे सवार नीचे
गर पडता । किन्तु वच्छराज कुशल घुडसवार था । उसने
ोडे पर वैठकर उसकी लगाम ढीली छोड दी, जिससे

घोड़ा उसके अधीन हो गया। कुछ दूर घूमकर वच्छर
राजा के साथ पुनः लौट आया। राजा को यह नि
हो गया कि यह बुद्धिमान व वीर है। मेरी पुत्री ने
के चुनाव करने मे किसी भी प्रकार की गलती नही
है। राजा ने वच्छराज और पुत्री को राजमहल मे बु
लिया।

कुछ दिन के पश्चात् पुष्पदत्त ने राजा से कहा
राजन्! मेरा सारा माल बिक गया है अब मै पुन: अ
देश जा रहा हूँ। वच्छराज ने उसे जाते हुए देखकर रा
से निवेदन किया कि मुझे अपने भाई हंसराज की ख
करनी है अतः मै भी इसके साथ जाना चाहता हूँ।
यहां पर आनन्द करूं और मेरा भाई कही पर द
भोगता रहे यह उचित नही है। राजा ने कहा कि
अपने आदमियो से आपके भाई की तलाश कराता हूँ
वच्छराज न माना। अन्त में राजा ने उसे विपुल
देकर अपनी पुत्री चित्रलेखा के साथ उसे विदा किया।

पुष्पदत्त ने जब से चित्रलेखा का रूप देखा था त
से वह उस पर मुग्ध हो रहा था। उसने सोचा जब
वच्छराज रहेगा वहाँ तक यह मुझे प्राप्त नही हो सके
एक दिन वह जहाज के किनारे जाकर खड़ा हो गया
उसने वच्छराज को आवाज देकर अपने पास बुलाया
और कहा देख–यह आठ मुखवाला मत्स्य कितना सु
लग रहा है।"

वच्छराज को पुष्पदत्त ने धक्का दे दिया। गि

वच्छराज को पुष्पदत्त की कलुषित भावना का ध्यान गया। उसने नवकार महामंत्र का स्मरण किया। एक स्य उधर से जा रहा था वह सीधा ही उसकी पीठ पर वैठा। नेत्र वन्दकर नवकारमंत्र का एकाग्रता से प करने लगा और मत्स्य तेजी से आगे वढ रहा था।

समुद्र मे जव धमाका हुआ तो चित्रलेखा चौंक पडी। ह् वाहर आकर देखती तो है पुष्पदत्त ने ढोंग करते हुए हा—कि मत्स्य को देखने के लिए वह झुका और गिर डा, मैंने वहुत प्रयास किया पर वच न सका। चित्रलेखा लाप करने लगी। वह स्वयं समुद्र में गिरना चाहती कि उसके कानों मे कही से यह आवाज आई कि तू त गिर। तेरा पति जीवित है और वह शीघ्र ही तुझे न्तीनगर मे मिलेगा।

चित्रलेखा को एक आशा की दिव्य किरण मिल गई। सने मरने का विचार स्थगित कर नमस्कार महामन्त्र । जाप प्रारम्भ किया।

तीन चार दिन के पश्चात् पुष्पदत्त उसके पास आया। सने चित्रलेखा से अपने हृदय की भावना व्यक्त की। त्रलेखा को यह समझने मे देर न लगी कि मेरे पति को मुद्र मे धकेलने वाला यही दुष्टात्मा है अत' उसने अपने ील की रक्षा के लिये कहा—अव आपके सिवाय मेरा ाधार ही कौन है, आप इतनी शीघ्रता क्यो कर रहे है। गर में पहुँचने पर विधिवत् सारा कार्य करना उपयुक्त हेगा।

पुष्पदत्त को भी चित्रलेखा की बात पसन्द आ ग

× × ×

इधर हंसराज भी अपने भाई वच्छराज की त
करने के लिए कुन्तीनगर में पहुँचा। सज्जनसिंह न
एक क्षत्रिय पुत्र उसे मिला। उसने हंसराज का सौजन
सद्व्यवहार देखा तो अत्यधिक प्रभावित हुआ।
उसका परिचय पूछा। अपने घर पर रहने के लिए
प्रार्थना की। हंसराज उसके वहाँ पर रह गया।

कुन्तीनगर के राजा के कोई सन्तान न थी।
स्मात राजा बीमार हो गया और सदा के लिये उसने
मूँद दी। राज्य सिंहासन पर कौन बैठे इस
को लेकर परस्पर विवाद हो गया। सभी ने अप
राज्य का अधिकारी बताया। समझदार नागरिकों ने
... लिया कि हथिनी के सूँड़ में कलश पकड़ा दि
जाय और साथ ही फूलों की माला भी। वह जिसके
पर कलश उँडेल दे और माला पहना दे वही राजा हो
हथिनी को सजाकर वैसा ही किया गया। हथिनी न
में घूमती हुई सीधी हंसराज के पास पहुँची और क
से उसका अभिषेक कर दिया। जय-जयकार के नार
गगन मण्डल गूँज उठा। हंसराज को राज प्रासा
लाये और आनन्दपूर्वक उसका राज्याभिषेक किया।
राज कुन्तीनगरी का राजा हो गया।

वच्छराज सात दिन तक मत्स्य की पीठ पर
रहा। मत्स्य आठवें दिन कुन्तीनगर के तट पर आ

ा। वच्छराज उसकी पीठ से उतर कर नगर की ओर
ा, पर सात दिन से भूखा और प्यासा होने से वगीचे
कुछ समय विश्राम लेने के लिए लेट गया। सात दिन तक
द न लेने से लेटते ही उसे गहरी नीद आ गई। वच्छ-
ज की पुण्यवानी से वह सूखा वगीचा लहलहाने लगा।
फलो से लद गये। उस वगीचे की मालकिन एक वृद्धा
लिन थी, उसके पाँचो पुत्र मर गये थे। जब उसने सुना
मेरा वगीचा फल फूलो से पल्लवित हो गया है तो वह
े देखने के लिए दौडी हुई आई। वगीचे मे वच्छराज को
ा हुआ देखकर समझ गई कि यह इसी का पुण्य-प्रभाव
। उसने वच्छराज को जगाया और उसे अपने घर ले
ई, वेटा! मेरे सभी पुत्र मर गये है यदि तू मेरे यहाँ पर
गा तो मेरा जीवन पुन: सरसज हो जायेगा। वच्छ-
ज ने बुढ़िया मालिन के प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर
या। वच्छराज मालिन के यहाँ पर रहकर मालाएँ,
ारे गूँथने लगा। मालिन उन्हे नगर मे वेच आती।
ा आय से दोनों अपना जीवन निर्वाह करने लगे।
च्छराज ने मालिन से कहा—इस नगर मे मुम्मण सेठ का
ा पुष्पदत्त व्यापार के लिए विदेश गया हुआ है वह
ा पुनः आने वाला है। उसके आने की सूचना मुझे
घ्र देना।

मालिन फूलो की मालाएँ वेचने के लिये वाजार मे
ई। उसने सुना कि मुम्मण सेठ का पुत्र पुष्पदत्त राज-
न्या के साथ विवाह कर लौटा है। वन्दरगाह से ही

भव्य जुलूस के साथ नगर में प्रवेश कर रहा है। मा
उलटे पैरों लौटकर आई। वच्छराज को बताया कि
आ गया है। वच्छराज ने अपने अद्भुत कौशल से मा
तैयार की और उसमे अपना नाम लिख दिया तथा
में पत्र भी लिख दिया। मालिन को कहा कि माताजी
सारी सामग्री चित्रलेखा के हाथ पहुँचा दे। अन्य किसी
यह सामग्री न बताएँ।

मालिन ने कहा—बेटा! कोई चिन्ता न कर मैं
कार्य इतनी चतुरता से करूँगी कि किसी को भी
न लग सकेगा, उसने अन्य भी बहुत सारे सुगन्धित
लिये और वह सीधी पुष्पदत्त के मकान पर पहुँची।
फूल पुष्पदत्त को भेंट किये। पुष्पदत्त ने मालिन से क
सामने कमरे में मेरी नई पत्नी है उसे फूलों से
ही प्यार है, ये सारे फूल उसे दे आओ।

मालिन तो यही चाहती थी। वह सीधी चित्र
के पास पहुँची। मालिन ने वह फूलो की माला दी।
लिखा था "मैं वच्छराज कुन्तीनगरी मे मालिन
पर आनन्द मे हूँ किन्तु तेरे बिना उदास हूँ, अवसर
शीघ्र मिलने का प्रयास करूँगा।"

अपने पति के समाचार पाकर चित्रलेखा प्र
से नाच उठी। उसने मालिन से अनेक बातें पूछी
मालाएँ किसने बनाई है। मालिन ने सारी बातें
विस्तार से बता दी।

चित्रलेखा ने भी लिखकर मालिन को दे दि

यह पत्र तुम अपने पुत्र को दे देना। उसमें उसने लिखा "पतिदेव! मैं आपके विरह मे व्यथित होकर समुद्र में गिर कर मरने वाली थी। पर मेरे कान मे ऐसी दिव्य वाणी आई कि आपके शीघ्र ही दर्शन होंगे अतः मैं जीवित रही! अपने सत्य-शील मे दृढ़ रहकर यहाँ पर आ पहुँची हूँ अब शीघ्र ही मेरा उद्धार कीजिए।"

पत्र पढकर वच्छराज सोचने लगा कि उसे किस प्रकार मुम्मण व पुष्पदत्त के चंगुल से मुक्त करूँ।

हंसराज ने राजा वनते ही यह उद्‌घोषणा करवाई कि जो वच्छराज के समाचार लाकर मुझे देगा उसे मैं यथेष्ठ पुरस्कार प्रदान करूँगा। उद्‌घोषक पुष्पदत्त के मकान के नीचे से घोषणा करता हुआ जा रहा था। चित्रलेखा ने सुना। उसने उद्‌घोपक को अपने पास बुला-कर कहा कि राजा को जाकर सूचित करो कि मैं तुम्हारे भाई के समाचार सुनाऊँगी, अतः शीघ्र ही मेरे लिए शिविका भेजो। राजसभा मे जाने की योग्य व्यवस्था करो।

उद्‌घोपक ने राजा को जाकर सारी वात कही। राजा ने उसी समय शिविका चित्रलेखा के लिए भेजी। राजा के इस सम्मान से मुम्मण और पुष्पदत्त फूले नही समाये। पुष्पदत्त भविष्य के सुनहरे स्वप्न संजोने लगा कि राजा प्रसन्न होकर मुझे अनेक गाँवों का मालिक वना देगा। अतः मुम्मण अपने सारे परिवार के साथ राजसभा में उपस्थित हुआ। महिलाओ के लिए और पुरुषों के

लिए अलग-अलग व्यवस्था कर दी गई। राजा ने
शान्ति रखने के लिए आदेश भी दे दिया।

चित्रलेखा ने गंभीरता के साथ कहना प्रारंभ कि
राजन्! आप दोनों सहोदर है। विमाता के कारण
श्री ने आपको अपने राज्य से निर्वासित कर दिया।
ने आपको दो अश्व और बहुमूल्य बारह रत्न दिये।
प्यास से आकुल-व्याकुल हो गये अतः आपके भाई
पीने के लिए सरोवर पर पहुँचे, आप वृक्ष के नीचे
गये। एक सर्प ने आपको डस किया। लौटकर भा
जब यह देखा तो वे घबरा गये। आपकी अन्त्येष्टि
लिए चन्दन की लकड़ियाँ लेने हेतु वे इसी नगर में आ
वे इस मुम्मण सेठ के चगुल में फंस गये। उन्होने दो
और रत्न धरोहर के रूप में रखे। जब चन्दन की ल
ड़ियाँ लेकर वे जंगल में पहुँचे तब आप वहाँ पर
मिले। निराश होकर पुनः शहर में आये। धरोहर मां
पर मुम्मण सेठ ने चोर कहकर उन्हे पकडवा दिया
आपके पूर्ववर्ती राजा ने उनको मृत्यु दण्ड दिया।

मुम्मण अपनी पोल खुल जाने से वहाँ से नौ
ग्यारह होना चाहता था पर सैनिको ने उसे रोक दि
चित्रलेखा ने आगे कहा—कोतवाल ने आपके भाई
पुत्र बनाकर अपने पास में छिपाकर रख लिया
मुम्मण सेठ का पुत्र पुष्पदत्त जहाजो में माल भर स
यात्रा करना चाहता था पर जहाज स्तंभित हो गये
सामुद्रिक ने मुम्मण सेठ को बताया कि वह अभी जी

ं या तो उसकी धरोहर दे दो या उन्हे साथ ले लो तो
हाज चलेगा। पुष्पदत्त ने दास रूप में अपने साथ में
कर यहाँ से प्रस्थान किया, कनकावती में मेरा उनके
ाथ विवाह हुआ। हम पुनः आपको ढूढने के लिए यहाँ
ा रहे थे कि पुष्पदत्त ने धक्का देकर उन्हे समुद्र मे गिरा
दया और मेरे साथ बलात्कार करना चाहा पर मैंने
क्ति से अपने पतिव्रत धर्म की रक्षा की। आपके भाई
मुद्र में गिरने के बावजूद भी जीवित हे और वे इसी
गर मे मालिन के यहाँ पर हे। जब भी आप चाहे तब
हर्ष उनसे मिल सकते है।

भाभी के मुँह से अपने भाई के समाचार सुनकर
सराज आनन्द से विभोर हो उठा। राजकीय सम्मान
 साथ अपने भाई व भाभी को राजमहल में लाया।

राजा हंसराज ने सुम्मण व पुष्पदत्त को देश से
र्वासित कर दिया। कोतवाल, मालिन व सज्जनसिंह
ा सम्मान किया। वर्षों तक दोनो भाई वहाँ पर रहकर
शलता से राज्य का संचालन करते रहे।

एक दिन दोनो भाइयो को माता-पिता की मधुर
मृति हो आई। कुछ समय के लिए नगरी का राज्य भार
ज्जनसिंह को सौंप कर विराट सेना के साथ वे पैठणपुर
ी ओर प्रस्थित हुए। महारानी हंसावली और राजा
रवाहन ने जब अपने पुत्रो के आगमन को सुना तो उन्हे
पार हर्ष हुआ। लीलावती के तो देवता ही कूच कर
ये। राजा नरवाहन को सत्य तथ्य का परिज्ञान हो

चुका था अतः उसने रानी लीलावती को सदा के लि
निर्वासित कर दिया और दोनों पुत्रों को राज्य देकर
ने प्रव्रज्या ग्रहण की ।

हंसराज और वच्छराज दोनों भाइयों ने भी वर्षों
सुचारू रूप से राज्य का संचालन किया, अन्त में उ
भी अपने पुत्रों को राज्य देकर संयम ग्रहण किया
उत्कृष्ट तप-जप का आचरण कर अपने जीवन को
पवित्र बनाया ।



३

विष और विषय

अपने महल की अटारी पर से एक सुन्दरी किशोरी
|गर की शोभा देख रही थी और अपनी सखियो के साथ
|स-बोल रही थी। उसी समय उसकी दृष्टि समीप के
|कान पर गई। मकान ो खिडकी में से उसने जो दृश्य
खा उसे देखकर वह कॉप गई। उसने देखा कि एक
,रुप अपनी पत्नी को वड़ी निर्दयता से पीट रहा है।
'चारी पत्नी चीख-चीखकर कह रही थी—"मैं निरपराध
, स्वामी ! मुझे इस प्रकार दण्डित न कीजिए।" किन्तु
तिदेव पर क्रोध का भूत चढा हुआ था, वे उस अबला
ो मारते-पीटते ही चले गए।

वह किशोरी थी राजकुमारी सुनन्दा, पृथ्वीभूषण
गर के राजा कनकध्वज की इकलौता वेटी। उस दृश्य
ो देखकर वह सिहर उठी थी और पुरुप जाति के प्रति
|सके हृदय मे वडी घृणा उत्पन्न हो गई थी। उसने अपनी
|खियो से कहा—

"सखियो ! जाओ, मेरी माता से कह दो कि सुनन्दा
भी विवाह नही करेगी। विवाह करके ऐसी क्रूर पुरुष

जाति के आधीन होकर रहना तो नरक की पीडा भो
के समान है। ये पुरुष स्वयं तो सभी प्रकार के कु
कुकर्म करते रहते है। जुआ खेलते है, शिकार करते
मास-मदिरा का सेवन करते है। किन्तु अपने कार्यों
विचार न करके स्त्रियों पर घोर अत्याचार करते
जाओ, माता से कहदो कि सुनन्दा कभी विवाह
करेगी। किसी भी स्थान से मंगनी आए तो वे स्वी
न करे।"

सखियाँ चतुर थी। उन्होंने समझाया —"अरी र
कुमारी! तू अभी भोली है। तू नही जानती कि
का जीवन पुरुष के सहारे के विना चल ही नही सक
थोडी और वडी होगी तव सब कुछ समझ जायगी।"

किन्तु उस समय हठी राजकुमारी मानी न
सखियों ने उसके आदेश का पालन किया। रानी य
मती ने वात सुनी और हँसकर रह गई।

हँसते-खेलते राजकुमारी सोलह वर्ष की तो हो ग
पूर्ण यौवन की देहरी पर वह पहुँच गई।

वसन्त ऋतु थी। राजकुमारी एक दिन महल की
पर टहल रही थी। उसने देखा सामने एक मका
एक युगल प्रेमालाप और प्रेमक्रीडा मे निमग्न था।
प्रतीत होता था मानो उनके सुख की कोई सीमा न
हो। यह दृश्य देखकर सुनन्दा का हृदय ऐसे सुख को प्र
करने के लिए तडप उठा। किसी समय पुरुष जाति

ूरता के विपय मे जो विचार उसके मस्तिष्क में आए े वे भाप वनकर जाने कहाँ उड़ गये ? वह सोचती रह ई—हाय ! ऐसा सुख मुझे भी मिले तो !

चतुर सखियाँ अपनी राजकुमारी के उस शारीरिक ौर मानसिक परिवर्तन को जान रही थी। उनमे से एक ोली—

"क्यो सखि ! ऐसे सुख को प्राप्त करने की अभि-ापा होती है न ? अरे, चिन्ता न कर, तू तो राजकुमारी है, तुझे तो उससे भी सहस्रगुना अधिक सुख प्राप्त ोगा।"

यौवन और काम के अन्धे थपेडों में डूवती-उतराती ुनन्दा ने एक दिन अपने गवाक्ष मे से एक अत्यन्त रूप-ान् युवक को नीचे वाजार मे एक पान वाले के यहाँ पान ाते हुए देखा। उसकी वडी-वडी आँखों, लम्वी और सशक्त भुजाओं तथा चौडी छाती को देखकर वह तत्क्षण उस पर मोहित हो गई। काम-पीडा से उसका रोम-रोम जलने लगा। अपनी एक-सखी को बुलाकर वह वोली—

"वह सुन्दरी युवक कौन है ? जानती है तू उसे ?"

"क्यों नही ? इसे कौन नही जानता ? सारे नगर में इसके जैसा दूसरा सुन्दर युवक है ही नही। जिधर से निकल जाता है उधर ही सैकडो सुन्दरियों के हृदय छलनी हो जाते हैं। रूप के साथ-साथ भगवान ने इसे बुद्धि भी ऐसी दी है कि · · ·।"

एक दिन अवसर मिला। नगर मे कौमुदी-महोत्सव
पर्व था। सभी नागरिक आनन्दोल्लास मे डूबकर
ार से वाहर उद्यान मे जा रहे थे। राजा और रानी
भी सपरिवार उसमे सम्मिलित होना था। धूमधाम
र चहल-पहल थी।

किन्तु सुनन्दा और रूपसेन को तो आज इस
धाम का लाभ लेकर अपनी वासना की तृप्ति करनी
। उन्होंने निश्चय कर लिया था कि वे किसी भी
ाने से उस उत्सव मे नही जाँयगे और जव नगर मे पूर्ण
कान्त होगा तव वे चुपचाप मिलकर विषयसुख भोगेंगे।
ः जव रानी ने राजकुमारी को उत्सव मे चलने के
ए बुलाया तव उसने अस्वस्थता का वहाना वनाकर
हलवा दिया—'मेरे सिर मे दर्द है। आप सव लोग
इये। कुछ देर वाद स्वस्थ होने पर मै भी आ
ऊँगी।'

सव लोग चले गए। रूपसेन ने भी ऐसा ही वहाना
ाया। नगर खाली हो गया। सुनन्दा ने अपने महल
पीछे की एकान्त खिड़की मे एक रस्सी की सीढी
टका दी थी और रूपसेन को संकेत भेज दिया था कि
ह उस सीढी के सहारे राजकुमारी के कक्ष मे पहुँच
ाय।

तैयारी तो सव ठीकठाक थी किन्तु विधि का विधान
छ अन्य ही था। हुआ यह कि उस नगर मे महाबल
ामक एक जुआरी भी रहता था। दुर्भाग्यवश वह अपना

सर्वस्व जुए में हार चुका था । अब उसके पास चो
करने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नही बचा था । अ
आज के उस अवसर को उसने भी अपनी कार्यसिद्धि
लिए पूर्णतः उपयुक्त समझा तथा अंधेरा होने पर वह
गली-गली, बज़ार-बज़ार चल पडा ।

राजकुमारी के महल की खिडकी के नीचे महाब
को एक सीढ़ी लटकती हुई दिखाई दी और भीतर अन्
कार । अन्धकार इसलिए था कि सुनन्दा ने अपनी सह
को सब दीपक बुझा देने का आदेश दिया था, ताकि कि
को वास्तविक स्थिति का ज्ञान न हो सके । तथा यदि को
भूला भटका प्राणी उधर से आ भी निकले तो यही सम
कि या तो भीतर कोई नही है, या राजकुमारी अस्व
होने के कारण विश्राम कर रही है ।

यह स्थिति देखकर महाबल की तो पांचों अंगुलि
घी में हो गई । उसने सोचा कि आज तो बिल्ली के भा
से ही छीका टूटा है । प्रसन्न होकर वह धीरे-धीरे सी
पर चढ़ने लगा । सीढ़ी को हिलता देखकर सुनन्दा
सहेली ने अँधेरे में यही समझा कि रूपसेन संकेतानुसा
आ पहुँचा है । उसने सुनन्दा को सूचित किया । सुन
प्रिय-मिलन की सम्भावना से पागल सी हो गई ।

खिड़की के ऊपर अन्धकार में जब एक मानव आकृ
उभरती हुई दिखाई पडी तब सुनन्दा की सखी ने स्वाग
करते हुए कहा—"पधारिये, रूपसेन श्रेष्ठि ! मेरी सर

ाकुमारी सुनन्दा आपकी प्रतीक्षा मे पलके बिछाए
ो है।"

जुआरी महालव एक बार तो कुछ चौंका, उसने सोचा
दाल में कुछ काला है। किन्तु फिर उसने मन पक्का
: लिया और सोच लिया कि जब ऊखल मे सिर दे ही
ा है तो मूसल का क्या डर ? जो होगा देखा जायगा।
चुपचाप खिड़की मे से भीतर उतर गया। सुनन्दा की
ी उसे हाथ पकडकर अपनी स्वामिनी के पर्यंक तक ले
। सुनन्दा ने महालव को अँधकार में ही अधीरतापूर्वक
ानी छाती से चिपटाते हुये धीरे से फुसफुसाकर कहा—

"प्रियतम ! कुछ बोलिएगा नही। प्रतीत होता है कि
ताजी ने कुछ दासियो को पूजा की सामग्री लेने भेजा
। वे आसपास के कक्ष में ही है। आज तो हम बहुत
ो से भडक रही अपनी काम-पिपासा को चुपचाप
न्त करें, फिर किसी दिन अवसर खोजकर हृदय की
य बातें करेंगे।"

अंधे को क्या चाहिये ? केवल दो आँखे। महालव ने
चा कि अच्छा भाग्य जागा। उसने बिना एक भी शब्द
ले राजकुमारी के साथ विषय-सुख का सेवन किया
र फिर अन्धकार मे ही लौटते समय राजकुमारी के
थिल होकर इधर-उधर गिरे बहुत से मूल्यवान आभूषण
कर वह उसी रास्ते से चम्पत हो गया। उसे कनक भी
ला और कामिनी भी। राजकुमारी भ्रमवश प्रसन्न थी
उसे अपने प्रियतम—प्रेमी रूपसेन के संयोग का अवसर

राजकुमारी सुनन्दा आपकी प्रतीक्षा मे पलके विछाए वैठी है।"

जुआरी महालव एक वार तो कुछ चौका, उसने सोचा कि दाल में कुछ काला है। किन्तु फिर उसने मन पक्का कर लिया और सोच लिया कि जव ऊखल मे सिर दे ही दिया है तो मूसल का क्या डर ? जो होगा देखा जायगा। वह चुपचाप खिडकी मे से भीतर उतर गया। सुनन्दा की सखी उसे हाथ पकडकर अपनी स्वामिनी के पर्यंक तक ले गई। सुनन्दा ने महालव को अँधकार में ही अधीरतापूर्वक अपनी छाती से चिपटाते हुये धीरे से फुसफुसाकर कहा–

"प्रियतम ! कुछ बोलिएगा नही। प्रतीत होता है कि माताजी ने कुछ दासियो को पूजा की सामग्री लेने भेजा है। वे आसपास के कक्ष मे ही है। आज तो हम बहुत दिनो से भडक रही अपनी काम-पिपासा को चुपचाप शान्त करे, फिर किसी दिन अवसर खोजकर हृदय की अन्य वाते करेंगे।"

अंधे को क्या चाहिये ? केवल दो आँखे। महालव ने सोचा कि अच्छा भाग्य जागा। उसने विना एक भी शब्द वोले राजकुमारी के साथ विषय-सुख का सेवन किया और फिर अन्धकार में ही लौटते समय राजकुमारी के शिथिल होकर इधर-उधर गिरे वहुत से मूल्यवान आभूषण लेकर वह उसी रास्ते से चम्पत हो गया। उसे कनक भी मिला और कामिनी भी। राजकुमारी भ्रमवश प्रसन्न थी कि उसे अपने प्रियतम–प्रेमी रूपसेन के संयोग का अवसर

मिला। जहाँ तक आभूषणों का प्रश्न था, राजकुमारी ने सोच लिया कि आभूपण टूट गये होंगे, सो रूपसेन उन्हे ठीक कराकर वापस लौटाने के लिए ले गया होगा।

उधर रूपसेन ने भी संकेत के अनुसार अपनी यात्रा आरम्भ की किन्तु मार्ग में किसी जर्जरित दीवार के ढह जाने से वह उसके नीचे दबकर मर गया। मृत्यु के समय उसके मन मे सुनन्दा के प्रति घोर राग था और विषय सुख भोगने की तीव्र लालसा थी, अतः वह सुनन्दा और महालव के संयोग से जनित सुनन्दा के गर्भ से उत्पन्न हुआ।

कौमुदी महोत्सव समाप्त होने पर जब रूपसेन के माता-पिता घर लौटे तो उन्हे वह नहीं मिला। चारों तरफ उसकी खोज की गई। राजा ने भी अपने सैनिक सभी दिशाओ मे दौडाये, किन्तु रूपसेन कही होता तो मिलता ? विषय के विष का मारा वह तो अपने अनेक भवो की दुःखद यात्रा पर चल पडा था।

सुनन्दा ने भी चुपचाप अपने प्रेमी की बहुत खोज कराई, किन्तु अन्त में जब निराशा ही हाथ लगी तब उसने भी सोच लिया कि आभूषण लेकर जाते हुए रूपसेन को चोरों ने मार डाला होगा।

महीने दो महीने मे जब सुनन्दा को अपने गर्भ का ठीक पता चला और भय हुआ तो उसने अपनी चतुर सखियों की सहायता से उस गर्भ को गिरा दिया और मुक्ति की साँस ली।

रूपसेन का जीव गर्भपात होने पर मरकर सर्प के रूप मे जन्मा ।

× × ×

कुछ ही समय मे सुनन्दा अपने पुराने प्रेमी रूपसेन को एक प्रकार से भूल ही गई । उसे विषय भोग का चस्का लग चुका था । अपनी सखी द्वारा उसने अपनी माता को विवाह के लिए कहलवाया । कनकध्वज ने उसका विवाह बड़ी धूम-धाम से क्षितिप्रतिष्ठित नगर के राजा के साथ कर दिया । सुनन्दा अपने पति के घर जाकर सुखपूर्वक रहने लगी ।

वह सर्प, जिसमे रूपसेन का जीव था, एक बार घूमता-फिरता सुनन्दा के महल में जा पहुँचा । वहाँ सुनन्दा को देखकर मोह के वशीभूत होकर उसके सामने अपना फन फैलाकर डोलने लगा । किसी भी प्रकार से वह सुनन्दा को छोड़कर अन्यत्र नहीं जाता था । यह देखकर राजा ने उस सर्प को मार डाला । सर्प मरकर एक कौवे के रूप मे उत्पन्न हुआ ।

वसन्तऋतु मे एकवार सुनन्दा अपने पति के साथ उद्यान मे वैठी प्रकृति की मधुरिमा का सुख लूट रही थी । वहाँ वह कौवा आ पहुँचा । सुनन्दा को देखकर वह मोह काग 'काँ' 'काँ' करने लगा और उसके चारो ओर मँड-राने लगा । पति-पत्नी के आनन्द में विघ्न पडा । सेवकों द्वारा दो-तीन वार उड़ाकर भगा दिये जाने के बाद भी

जब वह वहाँ से नही टला तो राजा ने अपने तीर से उसे बीध डाला ।

इसी प्रकार एक बार ग्रीष्म ऋतु मे सुनन्दा और उसके पतिदेव जब किसी वटवृक्ष की शीतल छाया विश्राम कर रहे थे तब एक हंस वहाँ आ गया । सुनन्दा को देखकर वह आनन्दमग्न होकर मधुर रव करने लगा राजा-रानी प्रसन्न होकर उसे देखते रहे । उसी समय एक कौवे ने उड़ते-उडते राजा पर बीट कर दी । राजा के क्रोध का पार न रहा । धनुष-बाण उठाकर तीर छोड़ दिया । किन्तु लक्ष्य भ्रष्ट हो गया और राजा के तीर से कौए के स्थान पर वह हंस विध कर मृत्यु को प्राप्त हुआ उस हंस मे रूपसेन का ही जीव था । अब मर कर वह किसी जंगल मे एक हरिण के रूप मे उत्पन्न हुआ ।

एक बार सुनन्दा अपने पति के साथ वन-विहार हेतु गई थी । विश्राम की बेला में राजा-रानी के समक्ष संगीतकार मधुर राग-रागिनियाँ छेड़ रहे थे । उनकी वीणा के स्वरो से आकर्षित होकर अनेक हरिण आस-पास एकत्रित होकर संगीत का आनन्द लेने लगे । कुछ समय बाद संगीत समाप्त हुआ । स्वरों का तार टूट जाने तर शेष सब हरिण तो कुलाचे मारते हुए सघन वन मे विलीन हो गए, किन्तु एक हरिण अपने स्थान से हिला तक नहीं निर्निमेष नयनो से वह सुनन्दा की ओर ही ताकता रहा। उसकी बड़ी-बड़ी सुन्दर आँखों से जाने कितने जन्मो का अटूट राग झर रहा था ।

राजा को हरिण अच्छा लगा। धनुष-वाण उठाकर उसे वीध डाला और भोजन के लिये उसे पकाकर तैयार करने को अपने रसोइयो को दे दिया। भोजन भी वना। राजा रानी उस हरिण का सुस्वादु मॉस खाते हुए प्रशंसा करने लगे—'अनेक वार हरिणो का मॉस खाया है, किन्तु इतना स्वादिष्ट मॉस पहिले कभी नही खाया।'

जव राजा-रानी इस प्रकार भोजन का आनन्द ले रहे थे, उसी समय संयोगवशात् दो ज्ञानी मुनि उधर से विचरते हुए निकले। स्थिति को देखकर एक मुनि ने दूसरे से कहा—"अहो! यह संसार विचित्र है। वास्तविक रूप मे विषयसुख भोगे बिना ही केवल विषयभोग की कामना और लालसा के कारण ही उस अभागे रूपसेन का जीव पॉच-पॉच जन्मो से कैसा दुःख भोग रहा है। जिस स्त्री की वह लालसा रखता है वह कितने आनंद से उसी का मांस खा रही है। सचमुच विपय विष से भी अधिक भयावह है।

राजा-रानी ने मुनियो को जाते हुए देखा, उनकी बातचीत तो वे सुन नही सके किन्तु उनकी मुद्रा से उन्हे शंका हुई कि कोई न कोई वात वे उन्ही के विषय में कर रहे है। अत राजा उठकर मुनियो के समीप गया। उन्हे वंदन करके वह वोला—

"मुनिवर! आपने हमे देखकर सिर हिलाया और कुछ वात भी तो की, क्या कोई वात हमारे विषय मे है? आपके इस प्रकार सिर हिलाने का कारण?"

मन्द मधुर स्मित के साथ मुनि ने उत्तर दिया—

"कुछ नही राजन् ! यह संसार ही विचित्र है।

"नही नही, मुनिवर ! स्पष्ट कहिए। मैं प्रार्थ
करता हूँ।"

"राजन् ! खेद और विचित्रता की बात यह है
विषय रूपी कषाय के वशीभूत होकर केवल उसक
चिन्तन करने मात्र से ही जीव पाप के दुर्ध्यान से इ
संसार में निगोद जैसे कितने ही भवो में भ्रमण करत
हुआ दुःख पाता है।"

इस समय आपको यह प्रसंग कैसे स्मरण मे आय
मुनिवर ! यदि हम से सम्बन्धित कोई बात है तो कृपय
अवश्य कहिए।"

राजा ने आग्रह किया। मुनि ने एक बार फिर कहा
"मैं तथ्य प्रकट करूँ तो आपको दुःख तो नही होगा ?"

"कदापि नही।"—सुनन्दा और राजा दोनो
कहा।

हित की बात जानकर मुनि ने कहना आरम्
किया—

"सुनन्दा ! अपने हृदय को दृढ तथा अपने विवेक
जागृत करके सुन। तू जब बारह वर्ष की किशोरी थी
अपने महल के गवाक्ष से तूने एक पुरुष को अपनी पत्
को निर्दयतापूर्वक पीटते हुए देखा। भावुकतावश तूने उ
समय यह निर्णय किया कि तू कभी विवाह नही करेगी।

किन्तु फिर तू यौवनवती हुई। तूने एक बार अन्य स्त्री-पुरुप को प्रेम-क्रीडा करते हुए देखा। तेरे हृदय मे वासना जागृत हुई और तू रूपसेन के प्रति आकृष्ट हुई। तुम दोनो ने एक कौमुदी-महोत्सव की रात्रि को अपने मिलने की योजना बनाई।

किन्तु उस रात्रि को जिस पुरुष से तेरा मिलन हुआ वह रूपसेन नही, एक जुआरी था, जिसका नाम था महालव। तू भ्रम में रही .. ...।"

"हाय ! यह कैसे हुआ मुनिवर ! रूपसेन क्यों नही आया था ? उसका क्या हुआ ?" – सुनन्दा ने आतुरतापूर्वक पूछा—

"वही वता रहा हूँ, सुनन्दे ! महालव चोरी करने निकला था। तेरे महल की खिडकी मे सीढी लटकती देखकर उसने अवसर का लाभ लेना चाहा। वह ऊपर चढ आया। तुम लोगो ने अंधकार मे उसे रूपसेन समझा और एक भी शब्द बोलने से मना किया। उसे क्या आपत्ति होती ? उसके साथ तुमने भोग भोगा ...।"

"किन्तु रूपसेन...?"

"वह भी तुम्हारे संकेत के अनुसार घर से निकला था। किन्तु मार्ग मे ही दीवार के नीचे दबकर मर गया। मरते समय तुममे अटूट राग और विषय-लालसा के कारण वह तेरा पुत्र हुआ, पर तेने उसे मरवा दिया। वह सर्प बना और तुम्हारे पास आकर मारा गया। फिर वह कौआ

बना, हंस बना, हरिण बना—और उस हरिण के मांस का भक्षण आज तुमने किया है।"

सुनन्दा को मूर्च्छा आने लगी। राजा ने उसे सहारा दिया। किसी प्रकार हृदय को दृढ करके सुनन्दा ने फिर पूछा—

—"अब वह रूपसेन का जीव कहाँ है, मुनिवर!"

"विन्ध्याचल पर्वत में सुग्राम नामक ग्राम की सीमा पर हाथी के रूप में उत्पन्न हुआ है।"—मुनि ने बताया

क्षण भर सुनन्दा स्तम्भित-सी हो रही। उसके हृदय में दुःख और पश्चात्ताप का भूडोल हो रहा था। किसी प्रकार उसने कहा—

"पूज्य मुनिवर! विषय भोग न करने पर भी उसे इतने कष्ट भोगने पड़े है, केवल उनकी लालसा के ही कारण, तब मेरा क्या हाल होगा? मैंने तो घोर पाप किये है। हाय, मेरे उद्धार की क्या आशा हो सकती है?"

शान्त, सौम्य और करुणापूर्ण मुद्रा मे ज्ञानी मुनि ने उसे आश्वासन और सहारा देते हुए कहा—

"सुनन्दा! श्रद्धा और साहस नही छोड़ना चाहिए। त्याग के मार्ग से बड़े से बड़े पापी का भी उद्धार हो जाता है। तू उस मार्ग पर चलेगी, तेरा उद्धार होगा। साथ ही तेरे मुख से अपने सात पूर्वभवों का वर्णन सुनकर रूपसेन

के जीव को भी जाति-स्मरण ज्ञान होगा, उसका मोह समाप्त होगा, उसे धर्म प्राप्त होगा और वह देवलोक में जायगा।"

इतना कहकर दोनो ज्ञानी मुनिवर आगे वढ गए।

रानी ने हाथ जोड़कर राजा से कहा—"मुझ पापिनी कलंकिनी को क्षमा करे। अव मै दीक्षा लेकर अपने पापो का परिमार्जन करना चाहती हूँ। आज्ञा दीजिए।"

"अव इस संसार के दु:ख भोगने के लिये मैं भी क्यों रहूँगा, सुनन्दे! हम दोनो ही इसका त्याग करेगे।" राजा ने उत्तर दिया।

दोनो दीक्षित हुए। उत्कट तपश्चर्या करके राजा ने उसी भव मे मुक्ति प्राप्त की।

सुनन्दा ने भी कठिन तप किया। कठोर संयम की आराधना की। उसकी सुकोमल, स्वस्थ देह सूखकर काँटा हो गई। उसे अवधिज्ञान प्राप्त हुआ। एक दिन उसने अपनी गुरुणी से सारी वात कहकर आज्ञा माँगी—"महाराज! आप आज्ञा दे तो मेरे निमित्त से जिस जीव ने सात-सात भव तक घोर दुःख प्राप्त किये है—उसे मैं प्रतिवोध देने जाऊँ।"

"आर्ये! तू ज्ञानवंत है, तुझे मेरी आज्ञा है। हमारे निमित्त से यदि कोई भी जीव आराधक बने तो श्रेष्ठ ही है।"

गुरुणी ने आज्ञा प्रदान की। सुनन्दा साध्वी अन्य चार साध्वियों के साथ सुग्राम ग्राम की ओर चल पड़ी।

वहाँ पहुँचकर जब वह ग्राम की सीमा की ओर जाने लगी तब ग्रामवासियों ने चिन्तातुर होकर पुकार लगाई —"साध्वीजी ! उधर न जाइये, उधर मदोन्मत्त हाथी है। वह किसी को जीवित नही छोड़ता। रुकिये, ठहरिये...... ।"

किन्तु साध्वी सुनन्दा शान्त भाव से आगे वढती गई। सामने से धूलि के वादल उठाता, वृक्षों को अपनी सूंड में लपेटकर धराशायी करता, एक चलते-फिरते साक्षात् भूडोल-सा हाथी दौड़ता चला आ रहा था। ग्रामवासी हृदय थाम कर रह गए—हाय, साध्वीजी का क्या होगा ?

जो होना था वही हुआ। साध्वी को देखते ही हाथी मोह से ग्रसित होकर झूमने लगा। लोग आश्चर्य से आँखें फाड़े दूर से ही देखते ही रह गए।

साध्वी सुनन्दा ने हाथी को उसके सातो भवो की कथा सुनाई और कहा—"रूपसेन ! अपने मोह का अब त्याग कर। अनर्थदण्ड के कारण अव अधिक हैरान मत हो। अपनी आत्मा का कल्याण कर।"

हाथी को जातिस्मरण ज्ञान हुआ। दूसरी आँखो से पश्चात्ताप के आसू झर पड़े। अपनी सूंड उठाकर उसने

साध्वी को प्रणाम किया और शान्तभाव से हस्तिशाला की ओर चला गया। छट्ठ (दो दिनका उपवास) के पारणे के दिन पुनः छट्ठ करके उसने देवगति प्राप्त की।

केवल मन द्वारा किए गए पाप के कारण भी जीव कैसे-कैसे दुःख भोगता है यह जानती हुई साध्वी सुनन्दा अन्त मे केवल ज्ञान प्राप्त कर मुक्त हुई।

—धन्यचरित्र

४

जागे तभी सवेरा

(प्रत्येक बुद्ध करकण्डु)

पूर्ण ज्ञान के पवित्र प्रकाश में जागे बिना जीव की मुक्ति सम्भव नही। कुछ लोग होते है जो जन्म-जन्मान्तरो तक अज्ञान के अन्धकार में सोए ही पडे रहते है और इस प्रकार उनके भव-बन्धन कभी टूटते नही। किन्तु कुछ लोग जो निरन्तर जाग्रत रहकर जीवन-पथ पर आगे बढते है, वे शुभ कर्मों के उदय होने पर सहसा किसी भी चमत्कृत क्षण में इस पार से उस पार पहुँच जाते है।

वह युग भगवान् महावीर का युग था। प्रभु इस धरा धाम पर एक स्थान से अन्य स्थान पर विचरण करते हुए भव्य जीवों को मुक्ति का मार्ग दर्शाते थे। उस युग में एक विशाल और समृद्ध नगरी थी जिसे लोग चम्पानगरी के नाम से पुकारते थे। राजा दधिवाहन वहाँ राज्य करता था। रानी पद्मावती प्रजा-पालन में अपने पति का हाथ बटाया करती थी। वह वैशाली गणराज्य के अध्यक्ष राजा चेटक की पुत्री थी। सुसंस्कार उसे विरासत में मिले थे।

एक वार रानी जव गर्भवती हुई तब उसे ऐसा दोहद उत्पन्न हुआ कि न वह उसे किसी को कह सकी और न उसे अपने मन से निकाल सकी। मन ही मन घुटती रही और दिन-दिन दुर्बल होने लगी।

राजा दधिवाहन ने रानी की वह दुर्बलता देखी और चिन्तित होकर एक दिन वे पूछ ही तो बैठे -

"क्या कारण है, रानी ! देखता हूँ कि तुम दिन-प्रतिदिन दुर्वल होती जा रही हो। शरीर पीला पड़ रहा है, मन तुम्हारा बुझा-बुझा सा प्रतीत होता है। ऐसा क्यों ? क्या तुम्हे दधिवाहन के राज्य में कुछ अभाव है ?"

"नही, राजन् ! भला मुझे क्या अभाव हो सकता है ? वैसे भी मेरे तो जीवन के सारे भाव-अभाव आपके प्रेम मे ही निहित है। स्वामी ! मुझे कोई अभाव नही, किसी भी प्रकार की कोई चिन्ता भी नही।"—रानी ने उत्तर दिया।

"ऐसा है, तव तुम्हारी इस दुर्बलता का क्या कारण है ?"

राजा के इस प्रकार आग्रहपूर्वक पूछने पर रानी ने आखिर अपने मन की वात कह दी—

"स्वामी ! मुझे दोहद उत्पन्न हुआ है कि मैं आपकी राजसी पोशाक पहन कर. पुरुषवेष मे, हाथी पर वैठकर घूमने निकलू और आप मेरे पीछे छत्र लेकर वैठें। किन्तु

यह ऐसा विचित्र दोहद है कि इसे प्रकट करते हुए मुझे अत्यन्त संकोच होता रहता था।"

यह सुनकर राजा खिलखिला कर हँसते हुए बोला—"अरे मेरी पगली रानी! इस ज़रा सी बात के लिए तुमने इतना संकोच किया और इस प्रकार कष्ट सहती रही? लो, अभी सारी व्यवस्था कराए देता हूँ।"

व्यवस्था हो गई। रानी पुरुषवेष मे हाथी पर सवार होकर वन-विहार के लिए निकली। राजा दधिवाहन छत्र लिए पीछे बैठे। नगर-निवासियो को यह छवि देखकर बड़ा आनन्द आया। रानी ने खुले हाथ से निर्धनो को दान दिया। चारों ओर आनन्द का वातावरण बन गया। परस्पर इतना घनिष्ट प्रेम करने वाले अपने राजा-रानी को देखकर प्रजा हर्ष के सागर में निमग्न होकर उनका जय-जयकार करने लगी।

किन्तु इस हर्षोल्लास के मधुर वातावरण मे सहसा एक भयानक घटना घटित हो गई। वर्षाकाल था। आकाश में घटाएं घिरी थी और रिमझिम-रिमझिम फुहारें पड रही थी। और जड़ता में भी जीवन फूक देने वाली सुरभित पवन के मन्द-मधुर-झकोरो से हौले-हौले बेभान होता हुआ गजराज मत्तावस्था मे आ गया। मतवाला होकर वह विन्ध्यपर्वत की ओर दौड़ पडा।

हाहाकार मच गया। गर्भवती और सुकुमारी रानी के लिए यह महा संकट की घड़ी थी। वह घबरा गई।

किन्तु राजा दधिवाहन ने रानी को धैर्य वँधाते हुए कहा—

"इतना घवराने की कोई वात नही। संकट आए भी तो भला साहस छोड़ने से क्या लाभ? मन का सन्तुलन विगडने नही देना चाहिए। वह देखो, सामने एक विशाल वट-वृक्ष है। हाथी उसके नीचे से जब निकले तव वृक्ष की एक शाखा को तुम पकड लेना। मैं भी ऐसा ही करूँगा। तनिक भी चिन्ता न करो।"

राजा ने तो निश्चय के अनुसार एक शाखा पकड़ ली। किन्तु घवराई हुई रानी ऐसा न कर पाई। राजा आवाज लगाता ही रहा और हाथी रानी को लेकर देखते-देखते ही वहुत दूर गहन वन मे विलीन हो गया।

संकट की वास्तविक घड़ी अब उपस्थित हुई।

रानी की खोज जितनी संभव थी दधिवाहन ने कराई, किन्तु विधि का विधान कुछ दूसरा ही था। रानी का कोई पता न लगा।

घने जंगलो मे इधर से उधर भागते हुए हाथी को जव प्यास ने व्याकुल किया, तव वह एक नदी में उतर-कर पानी पीने लगा। रानी ने यह अवसर उपयुक्त जान-कर पानी मे छलाँग लगा दी और तैरकर दूसरे किनारे चली गई।

किनारे तो वह आ लगी, किन्तु मजिल तो अव भी कही दिखाई पड़ नही रही थी। चारो ओर सघन, भया-

वह, निर्जन वन था। न कोई मार्ग और न कोई मार्ग दर्शक। रानी करे तो क्या, जाए तो कहाँ ? उसे कुछ भी नहीं सूझ रहा था। बिना समझे-बूझे, निरुद्देश्य, किन्तु हृदय में अब भय के स्थान पर साहस को प्रतिष्ठित कर वह आगे बढ़ चली—जो होना है वह होगा, कभी न कभी तो मार्ग मिलेगा ही।

प्रभु का स्मरण करती हुई, इस संकट से मुक्ति पाने तक आहार-पानी के त्याग का दृढ संकल्प लेकर रानी पद्मावती आगे बढ़ी।

संकल्प में महाशक्ति का निवास होता है, और भगवान में दृढ आस्था कभी विफल नही हो सकती। भटकती रानी को अचानक उस विरह वन में एक वृद्ध तापस के दर्शन हुए। अशान्त मन में शान्ति की लहरे उठने लगी। रानी भी अब पूर्णतया निर्भय हो गई। तापस द्वारा पूछे जाने पर रानी ने बताया—

"महाराज ! मैं राजा चेटक की पुत्री और राजा दधिवाहन की पत्नी हूँ। वन-विहार के समय हाथी के मन्दोमत्त हो जाने के कारण मेरी यह दशा हुई है। राजा से मैं बिछुड़ गई हूँ और वन में भटक गई हूँ।"

तापस ने प्रेमपूर्वक उत्तर दिया—

"बेटी ! चिन्ता छोड़ दो। समीप ही मेरा आश्रम है, वहाँ चलो। कुछ विश्राम करके, कन्दमूल से अपनी क्षुधा पिपासा शान्त करलो। उसके बाद मैं तुम्हे आगे कि

नगर में पहुँचा दूगा । वहाँ से तुम स्वदेश और स्वगृह को लौट सकोगी ।"

रानी ने उस वृद्ध और कृपालु तापस की वात स्वीकार की। विश्राम के उपरान्त तापस के साथ जव वह उसके आश्रम को छोडकर आगे वढ़ी तो चलते-चलते कोई एक नगर दिखाई पडा। तापस ने वताया—"यह दन्तपुर नामक नगर है। यहाँ का राजा वडा धर्मिष्ठ और न्याय-परायण है। वह तुम्हे अपने घर पर लौटाने की सारी व्यवस्था कर देगा। अव देखो, यह नगर समीप आ गया। आगे के मार्ग में खेत है और वे जोते हुए है। मैं जोती हुई भूमि पर नही चलता हूँ। अतः तुम अब निर्भय होकर नगर में चली जाओ।"

तापस को आदर सहित नमन कर रानी नगर की ओर चल पडी।

× × ×

दन्तपुर कलिंग देश की एक प्रमुख नगरी थी। विशाल थी वह नगरी। पद्मावती नगर-वीथियो मे इधर-उधर भटक रही थी कि उसे कुछ साध्वियो के दर्शन से गए। उसने उन साध्वियो को वन्दन किया और उन्ही के साथ उपाश्रय में चली आई। जव उसने अपना परिचय दिया तो उन साध्वियों को उसके हाल पर वड़ी दया आई। उन्होने उसे धैर्य वँधाया, उपदेश दिया और कहा—"रानी पद्मावती! यह संसार असार है। जीवन मे सुख और दुःख की परम्परा चलती ही रहती है। इस चक्र से सदा सदा के लिए छूटने का यत्न मनुष्य को करना चाहिए।"

रानी पद्मावती ने भली प्रकार जान लिया कि संस
के वैभव और सारे सुख और कुछ नही, केवल उडते
वादल की छाया है। इस घड़ी वे अस्तित्व मे प्रत
होते है—और अगले क्षण ही उड़ जाते है। इन विचा
का उदय होने पर उसे संसार से वैराग्य उत्पन्न हो ग
और उसने गुरुणी जी से दीक्षा ग्रहण करली। सकोचव
वह उस समय अपने गर्भ की वात गुरुणी जी के सम
प्रकट नही कर सकी।

किन्तु समय आने पर उसे प्रसव पीड़ा होनी प्रार
हुई। विचारवान गुरुणी जी को जब वस्तुस्थिति का ज्ञा
हुआ तब उन्होंने किसी श्रद्धाशील गृहस्थ के यहाँ उस
प्रसव की व्यवस्था करा दी।

समय होने पर रानी ने एक सुन्दर, सुकुमार बाल
को जन्म दिया। किन्तु अब तो वह साधु जीवन मे थी
बालक का क्या हो? कुछ विचार कर उसने उस बाल
को एक बहुमूल्य रत्न-कंबल में लपेटा और राजा दधि
वाहन की नामांकित एक मुद्रिका के साथ उसे श्मशान
ले जाकर भगवान के भरोसे छोड़ दिया। कुतूहलव
किसी वृक्ष की आड मे वैठकर वह देखने लगी कि अ
उस बालक का क्या होता है?

बालक भाग्यवान था। उस श्मशान का रक्षक चांडा
उधर आया और उसने उस बालक को वहाँ पड़ा दे
लिया। उसके कोई सन्तान नही थी। अतः वह तो उ
बालक को पाकर ऐसा प्रसन्न हुआ जैसे उसे आठों सिद्धि

और नवों निधियाँ प्राप्त हो गई हो। बालक को लेकर अपने घर गया और अपनी पत्नी को उसे देता हुआ बोला—

"ले, भाग्यवान! भगवान ने हमें यह सुन्दर बालक दे दिया है। अब इसे जी चाहे उतने लाड-प्यार से पाल।"

रानी ने सब देख लिया। बालक चांडाल-दम्पत्ति की पलको पर पलने लगा। रानी ने साध्वियों से कह दिया—मृत बालक उत्पन्न हुआ था। उसे श्मशान मे छोड़ दिया। बात आई गई हुई।

बालक बढने लगा। रानी बीच-बीच में उस चांडाल के घर जाकर उसे देख आती थी। वह बालक भी किसी नैसर्गिक प्रेरणावश रानी की ओर बहुत आकृष्ट होता था।

उस बालक का नाम 'अववर्णिक' रखा गया था। किन्तु आरम्भ से ही उसकी अपने शरीर को बार-बार खुजलाने की आदत के कारण लोग उसे 'करकंडु' कहने लगे थे। आगे जाकर उसका यही नाम प्रचलित रहा।

करकंडु जन्म से ही प्रतिभाशाली था आखिर वह राजा दधिवाहन और रानी पद्मावती का ही तो पुत्र था! बचपन मे ही वह अपने अन्य सभी बालको का नेता बन गया था। जब वह लगभग छह वर्ष का हुआ होगा तब उसके पिता ने उसे श्मशान की रखवाली का काम सौप दिया था।

एक दिन दो साधु उस श्मशान की ओर से जा रहे थे। वहाँ पर एक-पोटी के छोटे से बाँस को उगा हुआ देखकर गुरु ने अपने शिष्य को बताया—"यह बाँस चमत्कारपूर्ण है। लक्षण-शास्त्र की दृष्टि से बाँस में अनेक प्रकार के शुभ-अशुभ प्रभाव होते है। यह बाँस जब चार अंगुल का होगा, तब जो भी मनुष्य इसे अपने पास रखेगा वह अवश्य राजा होगा।"

मुनियों की यह बात दो व्यक्तियों ने सुन ली थी। एक करकंडु ने और दूसरे एक ब्राह्मण बालक ने। करकंडु ने सोच लिया कि जब यह बाँस चार अंगुल का होगा तब इसे काट लूगा। उधर वह ब्राह्मण बालक भी वह बाँस प्राप्त करने की ताक में रहने लगा।

एक दिन ब्राह्मण कुमार ने वह बाँस मूल से चार अंगुल तक खोदकर उखाड लिया। किन्तु वह उसे लेकर वहाँ से चम्पत हो सके इसके पूर्व ही करकडु वहाँ आ पहुँचा और दोनों में झगड़ा खडा हो गया। लोगों ने उन्हे समझाने का प्रयत्न किया—अरे, इतने से बाँस के टुकड़े में भला क्या रखा है? क्यों लडते हो? कोई भी इसे ले लो।

किन्तु दोनो में से कोई न माना। अन्ततः मामला न्यायाधिकारी के पास पहुँचा। उन्हे भी इन छोटे बालकों के इस छोटे-से झगडे से बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने भी उन बालकों को वही बात कही जो कि अन्य लोगों ने कही थी। किन्तु तब करकंडु ने कहा—

"महाशय ! यह बाँस मेरे श्मशान मे उगा । इस पर मेरा अधिकार है और यह मेरी सम्पत्ति है । यह लडका चोर है, इसे दण्ड दीजिए । वास्तव मे वात यह है कि जो भी व्यक्ति इस बॉस को अपने पास रखेगा वह राजा वनेगा । अतः मेरी वस्तु मुझे मिलनी चाहिए ।"

यह वात सुनकर न्यायाधिकारी महोदय हँस पड़े । करकंडु के साहस, तर्कबुद्धि और तेजस्विता से वे प्रभावित भी हुए थे । उन्होने झगड़ा निपटाने की दृष्टि से फैसला दिया—"अच्छा भाई, यह वॉस तुम्हारा है तो तुम्ही ले जाओ । किन्तु जव तुम राजा वनो तो एक गाँव इस ब्राह्मण वालक को भी दे देना ।"

"ठीक है, अवश्य दूगा, वचन देता हूँ ।"—करकंडु ने ऐसे गौरवपूर्ण स्वरो मे यह कहा मानो वह राजा ही हो ।

उस समय विशेप के लिए तो शान्ति हो गई, किन्तु एक चाडाल के वालक के द्वारा एक ब्राह्मण के बालक का इस प्रकार अपमान किया गया देखकर पूरी ब्राह्मण जाति मे असन्तोष फैल गया । उनके उच्च कुल का गर्व भयानक क्रोध मे परिणत हो गया और वे करकंडु की हत्या कर डालने का षड्यन्त्र रचने लगे । चाडाल को उस षड्यन्त्र की भनक पड़ गई । पुत्र-प्रेम का मारा वह अपनी पत्नी और पुत्र करकंडु को लेकर रातो-रात वहाँ से भाग खड़ा हुआ ।

चलते-चलते वे लोग कलिग देश की राजधानी कंचन पुर मे जा पहुँचे। लम्बे प्रवास के कारण वे खूब थक चुके थे। अतः नगर के बाहर एक स्वच्छ सरोवर के तीर पर वे ठहर गए। नहा-धोकर उन्होंने कुछ भोजन किया शीतल जल का पान किया और विश्राम करने लगे एक सघन वृक्ष की छाँह में।

कांचनपुर मे कलिग-नरेश की निस्संतान ही मृत्यु हो गई थी। नगरी शोकग्रस्त थी और प्रजा के सामने समस्या थी नए राजा के चुनाव की। मंत्रि-परिषद, सेना पति तथा अन्य गणमान्य व्यक्तियो ने गंभीर विचार-विमर्श के उपरान्त प्रशिक्षित अश्व द्वारा सुयोग्य व्यक्ति को राजा के रूप में नियुक्त करने का निश्चय किया। अश्व को सजाकर, मंत्रोच्चार के साथ खुला छोड दिया गया। अश्व सारी नगरी में इधर से उधर घूमा किन्तु कही ठहरा नहीं और अन्त में नगरी से बाहर सरोवर की ओर चल पड़ा। लोग निराश हो गए—हाय, इतनी बडी नगरी में कोई भी व्यक्ति राजा बनाने लायक नही मिला? अब क्या होगा? इस अनाथ राज्य का नाथ कौन बनेगा? वह कहाँ मिलेगा?

इसी चिन्ता और ऊहापोह मे पडी प्रजा अश्व के पीछे मन मारे चलती रही।

सरोवर के तीर पर जहाँ चाडाल-परिवार विश्राम कर रहा था, वही पर वह अश्व जा पहुँचा और

कंडु के सामने जाकर बड़े जोर से हिनहिनाकर सिर झुका कर खड़ा हो गया।

लोग हर्ष से पागल हो गए। उन्हें धूलि मे हीरा जो मिल गया था। सारी प्रजा ने विस्मय से अपने नए राजा को देखा—करकंडु के दीप्त मुख-मंडल से एक आभा प्रकट हो रही थी। उसके नेत्रो से ज्योति का एक निर्झर-सा फूटा पड रहा था। प्रजा के जय-जयकार से आकाश गूंज उठा। दिशाओं ने उस जयध्वनि को दुहराकर अपनी सम्मति प्रकट की। सरोवर की शान्त लहरे इस पवन के सहारे थिरक थिरक उठी।

मंत्री द्वारा सभी आवश्यक विधियाँ पूर्ण की गई। करकंडु को नए राजसी वस्त्रो से सुशोभित किया गया तथा अन्य राजचिन्ह उसे सौप दिए गए। हर्षोल्लास के बीच सारा समुदाय नगरी में लौट आया।

किन्तु एक समस्या उठ खडी हुई। करकंडु के साथ उसका चाडाल पिता भी था और माता भी। उनका परिचय जब लोगो को ज्ञात हुआ तो ब्राह्मण आदि उच्च वर्गों में असन्तोष फैल गया—क्या एक चांडाल पुत्र हम पर शासन करेगा—यदि ऐसा हुआ तो हमारे ब्रह्म-तेज का क्या होगा? धर्म रसातल को चला जायगा। हम सबको नरकवास करना पडेगा। नही-नही, ऐसा हम कदापि न होने देगे।

विद्रोह की स्थिति खड़ी हो गई। मंत्री और सेनापति

किंकर्त्तव्य-विमूढ हो गए। क्या किया जाय और क्या किया जाये, किसी को कुछ सूझा ही नही।

यह स्थिति देखकर करकंडु को क्रोध आ गया, राजदंड हाथ मे लेकर उसने सिंह-गर्जना की—'किसी में शक्ति हो तो छीन ले मुझसे यह राजदण्ड। यह राज्य मैंने भिक्षा में नही, भाग्य से पाया है, और उसकी रक्षा मैं अपने भुजदण्डों से करने की क्षमता रखता हूँ।'

सारी प्रजा ने विस्मय-विस्फारित नेत्रो से देखा कि करकंडु के हाथ में घूम रहे राजदण्ड से अग्नि के स्फुलिंग झर रहे थे। यह एक दैवी संकेत ही था। और उसी समय आकश से करकंडु के शीष पर पुष्पवर्षा होने लगी। देवदुन्दुभियो का गंभीर घोष सुनाई पड़ने लगा और आकाशवाणी हुई—'करकंडु महान् और तेजस्वी राजा होगा। इसकी अवज्ञा करने वाले का शीष उसके धड पर नही रहेगा।'

यह आकाशवाणी सुनकर विद्रोही ब्राह्मणों के जान के लाले पड़ गए। नियति के सम्मुख मस्तक झुका कर वे करकंडु की शरण में आ गए। एक बार फिर से 'महाराज करकंडु की जय' का निनाद आकाश में गूंज उठा।

अब करकंडु कलिंग नरेश बन चुका था। किन्तु जाति द्वेष और उच्च कुल की झूठी अहंता की भावना ने उसके हृदय पर एक आघात कर दिया था। उसने बड़े धीरज और साथ ही दृढ़ता पूर्वक द्विजों को समझाया—'भाइयों

उच्चता और नीचता तो मनुष्य के कर्मों और व्यवहार पर से निश्चित की जानी चाहिए। आदर शौर्य का, सदाचार का, विवेक का और गुणों का किया जाना चाहिए, न कि केवल किसी भी कुल का। चाँडालों से आप जो घृणा करते है यह उचित नही। वे ही वैसे ही मनुष्य है जैसे कि आप लोग। उन्हे भो संस्कार दीजिए और अपने साथ कंधे से कधा मिलाकर आगे बढ़ने दीजिए। समाज और राष्ट्र की उन्नति के लिये यह आवश्यक है।

चॉडालो का संस्कार किया गया। उन्हे शुद्ध किया गया और उनके घरो पर ब्राह्मणो ने भोजन भी किया। इस प्रकार सामाजिक उत्थान के एक नये युग का सूत्रपात हुआ। राज्य मे चारो ओर शान्ति व्याप्त हुई तथा सुख-समृद्धि दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी।

× × ×

धीरे-धीरे, पवन के पखो पर उड़ती हुई करकंडु की कीर्ति-कथा उस ब्राह्मण बालक तक भी पहुँची जिसने वह बॉस का टुकड़ा लेना चाहा था। अपनी किस्मत पर उसे बडा रोना आया। किन्तु भाग्य—लेख प्रबल है, यह मान कर वह अपने भाग्य का एक गॉव ही मॉगने के लिये चलता-चलता काचनपुर जा पहुँचा। राजा के सामने जाकर उसने विनय की—"महाराज! मैं वही अभागा ब्राह्मण हूँ जिसे राजा बनने पर एक गॉव प्रदान करने का वचन आपने दिया था।"

"हाँ, मित्र ! मैंने तुम्हें पहिचान लिया है। ओर मुझे अपना वचन भी याद है। बोलो, तुम कौन सा गाँव अपने लिये चाहते हो।"— राजा ने प्रेम भरे शब्द कहे। उसके मन में उस ब्राह्मण के प्रति न कोई द्वेष था और न क्रोध। महान् व्यक्तियों का हृदय भी महान् ही होता है।

ब्राह्मण कुमार ने हाथ जोडकर रहा -"प्रभु ! मैं अंग देश में, चम्पा नगरी के समीप ही एक गाँव मे रहता हूँ। अतः मुझे वही गाँव प्रदान कर दीजिये। भगवान आपके यश को चारो दिशाओ मे व्याप्त करे।"

राजा का वचन खाली जा नही सकता था और वह ग्राम राजा दधिवाहन के राज्य मे था। समस्या खडी हो गई। दूसरे की भूमि कैसे किसी को दे दी जाय ! अन्त मे वचा. कर करकंडु ने अपना दूत दधिवाहन के पास भेजकर सन्देश कहलवाया—

"कृपया अपने राज्य में से इस ब्राह्मण को उसका एक इच्छित गाँव इसे प्रदान कर दीजिये। उसके वदले मे आप मेरे कलिग राज्य में से उतनी ही भूमि, और यदि चाहें तो उससे दुगुनी भूमि अपनी इच्छानुसार ले ले।"

वात कोई असंगत या अनुचित तो थी नही। किन्तु राजगर्व और जातिगर्व का कोई क्या करे ? राजा दधिवाहन कलिग-नरेश के दूत की वात सुनकर फुफकार उठे—

"तुम्हारे चाडाल राजा को यह हिम्मत ! अब वह हम उच्च कुलोत्पन्न क्षत्रियो की समानता करने का दुस्साहस करने लगा ? प्रतीत होता है कि चीटी के पर निकलने लगे है। जाओ, जाकर उससे कहना की वस्तु के वदले मे वस्तु लेना देना तो वनियो का काम है। क्षत्रिय इस प्रकार की अदला-वदली नही किया करते। सुई की नोक के वरावर भूमि भी—राजा दधिवाहन के राज्य मे से उसे नही मिलेगी। उसमे शक्ति हो तो आजाये समरागण मे।"

दूत लौट आया। उसने जब यह वचन अपने राजा करकंडु को सुनाये तो वह क्रोध से तिलमिला उठा। उसी क्षण उसने अपने सेनापति को युद्ध के लिये कूच करने की आज्ञा प्रदान की।

× × ×

चम्पा तथा कलिग की विशाल सेनाएँ युद्धक्षेत्र में एक दूसरे के आमने-सामने आकर अड गई और शीघ्र ही भीपण युद्ध छिड गया। चारो ओर मार-काट मच गई। घायल सैनिको तथा पशुओ की आह-कराह से दिशाये गूँजने लगी। मृत मनुष्यों और पशुओं के मास को खाने के लोभी चील-कौए गिद्ध और श्रृगाल रणभूमि के आस-पास मँडराने लगे।

यदि दधिवाहन शक्तिशाली था और उसकी सेना विशाल थी तो करकंडु की नसो मे भी नया रक्त उछालें ले रहा था, उसका सैन्य भी कुछ कम नही था। घमासान

मचा हुआ था। कोई भी सेना पीछे हटने का नाम नहीं लेती थी।

साध्वी पद्मावती को यह जानकारी थी कि उसका पुत्र करकंडु कलिंग देश का राजा बन गया है। वह शान्ति और सन्तोषपूर्वक अपने साध्वी जीवन का पालन कर रही थी। किन्तु जब उसे यह सूचना मिली कि कलिंग तथा चम्पा मे, अर्थात् पिता तथा पुत्र में भीषण संग्राम छिड गया है तब वह शान्त न बैठ सकी। दुश्चिन्ताओं ने उसके कोमल हृदय को घेर लिया। अन्य कोई मार्ग न देखकर उसने अन्त मे अपनी गुरुणीजी से सारी बात स्पष्ट करदी कि किस प्रकार उसने अपने पुत्र को श्मशान में जीवित छोड दिया था, कैसे उसका लालन-पालन मातंग नामक चाडाल ने किया, कैसे वह कलिंग का शासक बना, और अब पिता-पुत्र मे ही यह भीषण समर छिड़ गया था।

यह रहस्य प्रकट करने के पश्चात् उसने गुरुणीजी से आज्ञा माँगी—

"कृपया मुझे रणभूमि मे जाकर उन दोनों को समझा कर इस युद्ध को रोकने का प्रयत्न करने की आज्ञा दीजिए। संकोचवश मैंने यह रहस्य आज तक आपसे छिपाए रखा उसके लिये मुझे क्षमा भी प्रदान कीजिए।"

अवसर की गंभीरता देखकर तथा लोकहित का विचार कर गुरुणीजी ने आज्ञा प्रदान कर दी और साध्वी पद्मावती रणक्षेत्र में जा पहुँची।

रानी पद्मावती आज वैराग्य की मूर्ति बनकर उसके सामने खडी थी।

साध्वी ने दधिवाहन को भी सारी कथा आदि से अन्त तक कह सुनाई। उस कथा को सुनकर राजा दधिवाहन के हृदय में क्या-क्या भाव न उठे होंगे? किन्तु विचारवान् राजा ने विवेक का आश्रय लेकर धैर्य धारण किया और वह अपने तेजस्वी वीर पुत्र से मिलने चल पड़ा।

हृदय से उमडकर आँखो मे घिर आना चाहने वाले हर्ष के आँसुओ को हृदय मे ही बरबस रोककर साध्वी पद्मावती अपना प्रयोजन सिद्ध करके चुपचाप लौट पडी—संयम और साधना की उस भूमि की ओर जहाँ आत्म-शान्ति का स्थायी निवास होता है।

पिता अपने पुत्र से और पुत्र अपने पिता से मिलने के लिये नंगे पैर ही दौड पडे। मार्ग में जब उनकी भेंट हुई तो पुत्र पिता के चरणो मे गिर गया। पिता ने अपनी विशाल भुजाओं मे समेट कर पुत्र को अपनी छाती से लगा लिया। दोनो ओर के असंख्य सैनिक अपने महान् स्वामियो के इस मिलन के शुभ प्रसंग को देखकर हर्षसे नाच उठे। रणवाद्यो के स्थान पर मंगल ध्वनियाँ चारो दिशाओ मे गूँज उठी। एक लम्बी, काली रात का अन्त हो गया। और सुख के सवेरे की शान्त प्रभा से दिशाएँ धुल गईं।

× × ×

"नही, वत्स ! मातंग तुम्हारा पिता नही, पालक अवश्य है । पिता के तुल्य तो वह है, क्योकि उसने तुम्हारे जीवन की रक्षा की है, तुम्हारा लालन-पालन किया है। किन्तु तुम्हारा पिता तो वही है जिसकी नामांकित मुद्रिका तुम जन्म से ही धारण किये हुये हो। उसे जरा ध्यान से देखो । वह मुद्रिका राजा दधिवाहन की है।"

यह कहकर साध्वी पद्मावती ने सारी वास्तविक घटना, आदि से अन्त तक, करकंडु को कह सुनाई। उसे सुनकर करकंडु का हृदय भर आया, आँसू उछलने लगा, और अपने महान् पिता से मिलकर क्षमा माँगने के लिये अधीर हो गया।

साध्वी एक अन्तिम ममता भरी दृष्टि करकंडु के ऊपर डालकर वहाँ से चल पडी और उसने दधिवाहन की छावनी का मार्ग पकडा।

साध्वी दधिवाहन के समक्ष अपनी प्रशान्त चाल से पहुँचती उससे पूर्व ही इस रहस्योद्घाटन की बात हवा के साथ उडती हुई चम्पापति के पास पहुँच चुकी थी। उसने अपनी साध्वी रानी को देखा—भावो का एक सागर उसके हृदय में आन्दोलित हो गया। किन्तु अब सब कुछ बदल चुका था। एक समय जो उसकी प्राणप्रिया रानी थी, वह आज साध्वी थी। काले भ्रमरों से घुँघराले उसके केश अब श्वेत पड़ चुके थे। नयनो की चंचल मादकता के स्थान पर सौम्य संयम का तेज बिखर रहा था।

स्वयं भी जव तव गौशाला का चक्कर लगाता रहता था, और गायों तथा उनके बछडों का सार-सम्हाल करता था। वडे प्रेम से उन्हे दुलराता और सहलाता था।

एक वार जव वह इसी प्रकार गौशाला मे गया तव उसने एक सुन्दर वछड़े को देखा। वह विल्कुल सफेद था, दूध की तरह स्वच्छ और श्वेत करकंडु को वह वड़ा प्रिय लगा। उसे उसने अपनी गोद में उठा लिया, खूव प्यार किया और फिर ग्वालो से कहा—

"इस गोवत्स की विशेष देखभाल करना। उसे खूव दूध पिलाना। इसे कोई कष्ट न होने देना।"

राजा की आज्ञा से उस वछडे की खूव देखभाल होने लगी। अपनी माता का दूध उसे जी भर कर मिलता। अतः उसका शरीर खूव हृष्ट-पुष्ट होने लगा। धीरे-धीरे वह एक अत्यन्त आकर्षक, शक्ति का पुंज, छोटे-मोटे हिम-शिखर की भाँति ही श्वेत और विशाल वृषभ वन गया। उसकी शोभा देखते ही वनती थी। राजा उसे देखकर फूला न समाता। उसकी वड़ी-वडी काली आखो मे अद्भुत चमक थी और राजा के प्रति वहुत प्यार उनसे प्रकट होता था। राजा ने उसके लिए सोने की शृंखला और स्वर्ण की ही घंटियाँ उसके गले में वाँधने के लिए वनवा दी थी।

एक वार, कुछ समय वाद, राज्य-कार्य की व्यस्तताओं से समय निकाल कर जव राजा अपनी गौशाला मे गया

राजा दधिवाहन अपने जीवन की सॉध्यवेला मे पहुँच चुके थे। उनका पुत्र, तेजस्वी पुत्र सब प्रकार से सुयोग्य और गुणवान था। उधर रानी पद्मावती द्वारा साध्वी जीवन अंगीकार कर लेने के बाद से वैसे भी उनके जीवन मे एक शून्यता व्याप्त होने लगी थी। अत उनके मन मे भी संसार से विराग उत्पन्न हो गया। पुत्र करकंडु को वे बडी धूमधाम से अपनी राजधानी मे ले गये और अंग प्रदेश के राजा के रूप में उनका राजतिलक कर स्वयं आचार्य धर्मघोष के पास दीक्षा ग्रहण कर आत्म-साधना में लीन हो गये।

करकंडु अब अंग तथा कलिंग दोनों देशो का राजा था। विशाल था उसका राज्य और असीम थी उसकी शक्ति। किन्तु शक्ति और साम्राज्य का तनिक भी अहंकार उसके मन में नही था। कुछ अच्छे संस्कार उसे जन्म से ही अपने माता-पिता से मिले थे और और फिर उसके बाद उसके जीवन की अद्भुत-घटनाओ तथा अनेक उतार चढावों ने भी उसके हृदय मे विवेक की दीपशिखा जागृत कर दी। अतः बडे विवेक पूर्वक, नीति तथा धर्म का अनुसरण करता हुआ वह दीर्घकाल तक अपने राज्य का शासन करता रहा।

भारतीय संस्कृति मे गौ का सदा ही विशेष महत्व रहा है। उसे माता के समान ही माना गया है। करकंडु को भी गौओं से विशेष प्रेम था। उसकी गौशाला विशाल थी। उसकी देखरेख का वह बहुत ध्यान रखता था।

ार विदीर्ण हो गया। वैराग्य की ज्योति रश्मियाँ फूट
ड़ी। राजा करकंडु को उसी क्षण-जाति-स्मरण ज्ञान
ुआ और उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह किसी लम्बी,
ाहरी, मोहमयी निद्रा से अभी-अभी जाग पडा है।

मोह-निद्रा से जागे हुए राजा करकंडु ने वही मन से
ंयम ग्रहण कर लिया, देवताओ ने गृहस्थ वेष के स्थान
र मुनि वेष प्रदान किया और वे वन की ओर जाकर
ृथ्वी पर प्रत्येक बुद्ध बनकर विचरण करने लगे।

— उत्तरा० अ० ९/कमल सयमी टीका



तो उसे वह अपना प्रिय वृषभ कही दिखाई न पडा। इससे पूर्व वह जब भी गौशाला में जाता था। तब दूर से ही उसे वह वृषभ अन्य सब गाय-बैलो के बीच तुरन्त दिखाई दे जाता था, क्योंकि उसका आकार और सौंदर्य सबसे निराले ही थे।

राजा ने चिन्तित होकर ग्वालो से उस वृषभ के बारे में पूछा तब उसे उत्तर मिला—"राजन्! यह जो आपके सामने ही वृद्ध, दुर्बल और बीमार वृषभ सिर झुकाए बैठा है, यही तो है वह आपका प्रिय वृषभ।"

उस वृषभ को देखकर राजा को अपनी आँखों और ग्वालों के कथन पर तनिक भी विश्वास नही हुआ। कहाँ वह हिमशिखर के समान शुभ्र, विशाल वृषभ और कहाँ यह दुर्बल, मरियल, बीमार बैल, जिसके मुख पर मक्खियाँ भिनभिना रही थी और जिन्हे उडा सकने की शक्ति भी उसमें दिखाई न पड़ती थी।

ग्वालों ने राजा को विश्वास दिलाया—"राजन्! यह बूढ़ा हो गया है, इसीलिये उसकी यह दशा हो गई है।"

विवेकशील राजा करकंडु घडी भर विचार-सागर में डूब गया—वृद्धावस्था इतनी दयनीय होती है? यह किसी भी प्राणी को नही छोड़ती? संसार का यह धन-वैभव, यह शोभा, ये सारे सुख—सब अस्थिर है, नाशवान है?

चिन्तन के प्रबुद्ध होते चले जाने से अज्ञान का अंध

मे ली हुई देखी थी, अतः अपनी कन्या का नाम उन्होने मिला जुलाकर रखा—मदनमंजरी।

मदनमजरी वडी सुन्दर वालिका थी। उसके अद्भुत सौंदर्य को देख-देखकर राजा-रानी फूले न समाते थे। उस वालिका को यदि साक्षात् सौंदर्य की देवी ही कहा जाय तो इसमे तनिक भी अतिशयोक्ति नही होगी।

इस कन्या-रत्न को प्राप्त करने के बाद राजा जयवर्म को अपने जीवन और राज्य मे कहीं कोई कमी नजर न आती थी। फिर भी पृथ्वी विशाल है और संसार मे एक से एक वढकर अद्भुत वस्तुएँ दिखाई देती ही रहती हैं। अत· एक दिन मौज मे आकर राजा ने अपने एक दूत से पूछा—

'तुम देश-विदेश में निरन्तर भ्रमण किया करते हो। वताओ, तुमने कही कोई ऐसी विलक्षण वस्तु भी देखी है जोकि अपने राज्य मे न हो ?"

राजभक्त दूत ने विनम्र उत्तर दिया—"प्रभु! आपके राज्य मे भला किस वस्तु की कमी हो सकती है। यहाँ तो सभी कुछ है। प्रजा सुखी है, सम्पन्न है। राज्य मे धर्म और नीति का प्रसार है। कोई भी अभाव नही।

किन्तु राजा माना नही। उसने कहा—'मेरी प्रशंसा छोड दो। मैं सत्य जानना चाहता हूँ। निर्भीक होकर वताओ कि क्या कही, किसी भी देश में तुमने कोई अद्भुत वस्तु देखी है ?''

५

एक दुर्लभ क्षण
(प्रत्येक बुद्ध द्विमुख)

अनेक बार मनुष्य के जीवन में बड़ी-बडी और महत्व पूर्ण घटनाएँ घटित हो जाती है, किन्तु उसे इन घटनाओं में से कोई भी वोध प्राप्त नही हो पाता, जवकि कभी कभी अत्यन्त सामान्य प्रतीत होने वाली कोई एक छोटी सी बात ही मनुष्य के अन्तरतम तक पैठ कर उसके समग्र अस्तित्व को झकझोर कर रख देती है तथा उसे एक दूसरा ही मनुष्य बना देती है ।

पाँचाल नरेश राजा जयवर्म के साथ एक ऐसी ही घटना घटित हुई । उसकी राजधानी काम्पिल्यपुर मे थी। उसकी रानी गुणमाला रूप और गुणो की एक झिल मिलाती माला के समान ही थी । उनके सात पुत्र थे किन्तु कोई पुत्री नही थी । यह एक ही अभाव राजा और रानी को सदा सताता रहता था । पुत्री प्राप्त करने के लिए उन्होने अन्त में 'मदन यक्ष' की पूजा की और संयोगवश रानी को पुत्री-रत्न की प्राप्ति हो भी गई । पुत्री के जन्म से पूर्व रानी ने स्वप्न मे कल्पवृक्ष की मंजरी अपने हाथ

से सिंहासन पर बैठता था। मुकुट मे जडी हुई मणियो मे उसका चेहरा बडी सुन्दरता से प्रतिबिम्बित होता था। उससे ऐसा प्रतीत होता था मानो उसके दो मुख हो। अत. उसका नाम धीरे-धीरे 'द्विमुख' प्रसिद्ध हो गया।

राजा जयवर्म के इस अद्भुत और मूल्यवान मुकुट की चर्चा खूब फैली। दूर-दूर से यात्री उसे देखने के लिए आने लगे। उस समय मालवा का राजा चण्डप्रद्योत भारतवर्ष मे बडा शक्तिशाली राजा माना जाता था। उसकी राजधानी अवन्ती थी। जब उसने इस मुकुट की चर्चा सुनी तो वह ईर्ष्या से जल उठा और सोचने लगा कि यह मुकुट तो उसके हाथ लगना ही चाहिये। यह निश्चय करके उसने अपने सबसे कुशल दूत लौहजंघ को बुलाकर उसे काम्पिल्यपुर जाने की आज्ञा दी और कहा–

"जैसे भी हो, जयवर्म से वह मुकुट लाना ही होगा। उसे समझाओ, डराओ-धमकाओ, कुछ भी करो, किन्तु वह मुकुट सम्राट् चण्डप्रद्योत को मिलना ही चाहिए।"

"जो आज्ञा!" कहकर दूत अवन्ती से चल पडा।

काम्पिल्यपुर पहुँच कर लौहजंघ ने राजा जयवर्म को अपने राजा का सन्देश सुनाया और कहा—राजन्! वह मुकुट दे दीजिये और व्यर्थ के विग्रह से बच जाइये। मेरे स्वामी सम्राट् चण्डप्रद्योत की तलवार यम की तलवार है। उनका क्रोध स्वयं काल का ही प्रतिरूप है।"

राजा के इस आग्रह पर दूत ने कहा –

"राजन् ! स्मरण होता है, एक बार मै वत्स देश की राजधानी कौशाम्बी में गया था । वहाँ के राजा शतानीक का कला प्रेम प्रसिद्ध है । उसने अपने महल मे एक ऐसी चित्रशाला बनवाई है जो कि कला की दृष्टि से अद्वितीय कही जा सकती है । उस चित्रशाला में अंकित कराए गए चित्र इतने कलापूर्ण, ऐसे सजीव, ऐसे सुन्दर है कि उन्हें देखने वाला स्वयं ही चित्रलिखित-सा रह जाता है ! वे ही दिव्य भाव उन चित्रो मे अंकित किये गये है । एक एक चित्र स्वयं बोलता हुआ प्रतीत होता है । यदि वैसी चित्रशाला आप अपने यहाँ बनवा ले तो फिर अपने रा मे कोई भी कमी न रह जाय ।"

दूत की यह बात सुनकर राजा जयवर्म बहुत प्रसन्न हुआ । उसने निश्चय कर लिया कि वह ऐसी चित्रशाला अवश्य बनवायेगा । निश्चय के अनुसार उसने दूर-दूर देशो से गुणी वास्तुशिल्पी तथा चित्रकारो को बुलवाया चित्रशाला के लिए एक उपयुक्त स्थान की खोज क राजा ने वहाँ नीव खुदवाना आरम्भ किया । जब नीं की भूमि खोदी जा रही थी । उस समय एक विचित्र घ हुई । भूमि खोदते समय उस स्थान पर एक अत्य मूल्यवान् मणियों से जड़ा हुआ सुन्दर मुकुट निकला । पर अनेक प्रकार की पुतलियाँ भी बनी हुई थी । मुकुट को प्राप्त कर राजा बड़ा प्रसन्न हुआ । अब वह अद्भुत मुकुट को अपने शीष पर धारण कर बडी

"सारी शक्ति के साथ जयवर्म पर आक्रमण करो। (उ)सके राज्य की ईंट से ईंट बजा दो। नगरों को उजाड़ (दो)। ग्रामो को वीरान कर दो। खेतो और खलिहानो मे (आ)ग लगा दो। जो भी सामना करे उसे धूल मे मिलादो।"

सेनाएं रणागन मे आ गई। यदि चण्डप्रद्योत तूफान (क)ी तरह चढा था तो जयवर्म भी पर्वत की तरह अडा (था)। कोई किसी से कम नही था। एक ओर अभिमान (थ)ा तो दूसरा ओर भी आन का प्रश्न था। घमासान युद्ध (हु)आ। कुछ समय के लिए तो ऐसा प्रतीत होने लगा था (म)ानो सारी सृष्टि का संहार सन्निकट है। एक भी पक्ष (ए)क भी पग पीछे हटाने के लिए तैयार नही था।

किन्तु संसार मे केवल शक्ति ही नही, नीति और (न्)याय का भी अस्तित्व है। वह नीति और न्याय राजा (ज)यवर्म के पक्ष मे था। इसके अतिरिक्त जयवर्म द्वारा (र)चे गये गरुड व्यूह मे चण्डप्रद्योत का सैन्य अन्ततः बुरी (त)रह फँस गया। सैनिक प्राण बचाकर भागने लगे। (अ)पनी सेना को भागता देखकर चण्डप्रद्योत ने भी भागने (क)ा उपक्रम किया किन्तु वह भाग न सका। उसे वन्दी (ब)ना लिया गया।

वन्दी चण्डप्रद्योत से 'द्विमुख' ने पूछा—

"कहिये सम्राट! अपने मन की आपने पूरी करली (य)ा अभी और कुछ शेष है?"

दूत की ये धृष्टताभरी बाते सुनकर राजा जयवर्म को बड़ा क्रोध आया। वह भी क्षत्रिय था, वीर था और जान हथेली पर लेकर चलने वाला लड़ाका था। उसने चण्डप्रद्योत के सन्देश के उत्तर मे सन्देश कहलाया—

'ये गीदड़ भभकियाँ किसी और को दिखाना। तुम्हारे राजा को मैं अच्छी तरह जानता हूं। यह वही चण्डप्रद्योत है न जो मगध के रणक्षेत्र में अभयकुमार द्वारा बेवकूफ बनाकर भगा दिया गया था और वत्स के युद्ध मे मृगावती नामक एक औरत से छला गया था। अब वह किस मुँह से अपने आपको वीर कहलवाता है। जाओ, उसे कहना कि राज्य और राजमुकुट भिक्षा में नही मिलते। फिर भी—यदि उसे इस मुकुट को प्राप्त करने की इतनी ही अभिलाषा हो तो अपने चार रत्न—शिवादेवी रानी, लौहजंघदूत, अग्निभीरू रथ और अनलगिरि हाथी मुझे दे दे। बदले में यह मुकुट मैं उसे दे दूँगा।"

अपने राजा का ऐसा अपमान होता देखकर और अपने कार्य की असफलता से निराश होकर लौहजंघ मन-ही-मन क्रोध में जलता-भुनता वहाँ से चल पड़ा।

चण्डप्रद्योत ने जब जयवर्म का सन्देश सुना तो उसके रोम-रोम मे आग लग गई। जयवर्म द्वारा मुकुट के बदले में उसकी रानी की माँग ने तो उसे अपमान के मारे बावला ही बना दिया। उसी क्षण उसे अपने सेनापति को आज्ञा दी—

"आपके लिये वह ज्वाला ही है, महाराज! उसका विचार हृदय से निकाल दीजिये। वह है राजकुमारी मदनमंजरी।"—सेवकों ने कुछ व्यंग के साथ चण्डप्रद्योत को वताया।

वासना-विलासी राजा चण्ड चुप रह गया। जान गया कि यहाँ उसकी दाल गलने वाली नही है। अनमना होकर वह अपने कक्ष के एक अँधेरे कोने में वैठकर अपनी निराशा के आँसू चुपचाप पीने लगा।

कुछ दिन और भी वीत गये। एक दिन राजा द्विमुख चण्डप्रद्योत की कुशल पूछने आया। चण्ड को अनमना हताश, दुर्वल और चिन्तित देखकर उसे दुःख हुआ। वह उसका वन्दी ही सही, किन्तु था तो एक राजा ही। और उस समय तो वह उसका अतिथि भी था। उसने सहानु-भूतिपूर्ण स्वर मे पूछा—

"आपको कोई कष्ट है, राजन्! युद्ध मे जय और पराजय तो होती ही रहती है। आप निस्संदेह एक वीर नरेश है, इस हेतु मैं आपका आदर करता हूँ। कहिए, संकोच का त्याग करके, मुझे वताइये कि आपको क्या कष्ट है? मेरे वश में वश हुआ तो आपकी इच्छा की पूर्ति हेतु कुछ भी उठा न रखूँगा।"

राजा जयवर्म के मुख से ऐसी स्नेह और सहानुभूति पूर्ण वात सुनकर प्रचण्ड चण्डप्रद्योत का हृदय भी पिघल गया। किन्तु वह समझता था कि जो वात उसके मन को

चण्डप्रद्योत कोई उत्तर न दे सका। वह लज्जित था। उसने इतना ही कहा—"तुम जीते, मैं हार गया।"

द्विमुख नीतिवान राजा था। अपने बन्दी राजा को उसने पूरे राजकीय सम्मान के साथ सुविधापूर्ण महल में रखा। उसका आदर भी किया और कोई कष्ट उसे नहीं दिया। सेवक उसकी सुख-सुविधा का पूरा ध्यान रखते। स्वयं द्विमुख भी समय-समय पर उसके हाल-चाल पूछ लिया करता था।

ऐसे ही कुछ समय व्यतीत हो गया। एक दिन बन्दी राजा चण्डप्रद्योत महल की छत पर टहल रहा था। उस समय उसे एक अन्य महल के गवाक्ष मे एक अद्वितीय सुन्दरी कन्या के दर्शन हुए। वह राजकुमारी मदनमंजरी थी। उसके नवयौवन तथा सौंदर्य को देखकर चण्ड-प्रद्योत के हृदय मे बसा हुआ वासना का विषधर फिर से फन उठाकर फुफकार उठा। उससे पूर्व उसने अनेक सुन्दरियाँ देखी थी। कुछ उसे प्राप्त हुई थी, कुछ को वह कभी प्राप्त न कर सका था। अनेक अवसरो पर उसे लज्जित होना पड़ा था, मुँह की खानी पडी थी। किन्तु वे सब प्रसंग मदनमजरी को देखकर वह भूल गया और एक पतंग की भाँति उस दीपशिखा पर जल मरने के लिये प्रस्तुत हो गया।

"देवानुप्रिय ! यह रूप की जलती ज्वाला-सी सुन्दरी कौन है ?"

होकर रह गई है कि मिटाये नही मिटती। उसी दिन से न मुझे दिन मे चैन है न रात में। मैंने स्वयं को समझाने का वहुत प्रयत्न किया है, किन्तु कोई फल नही निकला। प्रतीत होता है कि यह वेदना तो अव मेरे प्राणो के साथ ही दूर होगी।"

चण्डप्रद्योत की यह वात सुनकर राजा जयवर्म ने कुछ क्षण गम्भीर विचार किया। फिर उसका मुख प्रसन्नता से भर उठा। उसने विचार किथा चण्डप्रद्योत जैसा तेजस्वी और पराक्रमी राजा उसकी देवांगनाओ जैसी सुन्दरी कन्या को अन्यत्र कहाँ मिलेगा? यह तो भाग्य की ही वात है कि ऐसा प्रतापी पुरुष स्वयं ही उसकी याचना कर रहा है। यह विचार कर जयवर्म ने कहा—

"मालवराज! चिन्ता को अव अपने हृदय से निकाल दीजिये। जयवर्म अपने वचन का पालन अवश्य करेगा। आपकी इच्छा पूर्ण होगी।"

फिर क्या था, चण्डप्रद्योत प्रसन्न हो गया। काम्पिल्यपुर की समस्त प्रजा भी यह संवाद सुनकर हर्षित हो गई कि उसकी प्राणो से प्यारी राजकुमारी के लिए मालवराज जैसा प्रतापी नरेश वर के रूप मे चुन लिया गया है और इस सम्वन्ध की याचना स्वयं मालवपति ने ही की है।

काम्पिल्यपुर मे घी के दीपक जल उठे। राजकुमारी मदनमंजरी और मालवपति चण्डप्रद्योत का शुभ विवाह

खाये जा रही है वह कभी पूरी होने की नहीं। अ
अत्यन्त हताश स्वर में एक दीर्घ निःश्वास लेकर व
बोला—

"राजा जयवर्म ! महाराज द्विमुख ! तुम धन्य हो
मैं तुम्हारा बन्दी हूँ, फिर भी तुमने मेरे साथ जो स्ने
पूर्ण व्यवहार किया है वह सर्वथा स्तुत्य है। रही मे
चिन्ता या कष्ट की बात, सो उसे तो जाने ही दो। ऐ
कोई बात नहीं है जो मैं तुम्हें कह सकूँ। मेरे मन में
कुछ है, उसे मेरे मन में ही दबा रहने दो। अपने मुख
वह बात प्रकट करते हुए भी मुझे लज्जा आती है।
तुम्हारा अपराधी हूँ।"

किन्तु राजा जयवर्म माना नहीं। उसने आग्रह किया

"राजन् ! आप मेरे बन्दी ही नहीं, अतिथि भी हैं
आपकी इच्छा की पूर्ति करना मेरा धर्म है। मैं वच
देता हूँ कि आपकी भावना अवश्य पूर्ण करूँगा। आ
संकोच त्याग कर अपने हृदय की बात मुझे कह दीजिए।"

यह कहकर जयवर्म ने चण्डप्रद्योत का हाथ अ
हाथ में ले लिया। वचन देने का यह एक और संकेत था
तब आश्वस्त होकर चण्डप्रद्योत ने कहा—

"राजन् ! आप इतना आग्रह करते हैं तो फिर क
ही देता हूँ। एक दिन मैंने महल की छत पर टहलते हु
राजकुमारी मदनमंजरी को देखा। वह क्षण मुझे भुला
नहीं भूलता। वह छवि मेरे अन्तर में कुछ ऐसी अंकि

ाग्रक्तियो ने क्रमशः उस ध्वज की उसी प्रकार से पूजा-
र्चना की। धवल और शीतल चाँदनी से खिली हुई
र्णिमा की वह सारी रात्रि आमोद-प्रमोद, नाच-गान
था हर्षोल्लास में सानन्द व्यतीत हुई।

उत्सव के अन्त हो जाने पर उस स्थान की सारी
जावट हटा ली गई। रेशमी वस्त्र, सोने, चाँदी के कलश
पहार इत्यादि सब वस्तुएँ एक-एक कर विलीन हो
ई। धीरे-धीरे वह स्थान जहाँ एक समय नाच-गान
ौर हर्षोल्लास का आनन्ददायी शोर मचा हुआ था,
र्णत: निर्जन, नि:शब्द और शून्य हो गया।

कुछ समय बाद एक बार राजा द्विमुख उधर से गुजरा
स समय उसने उस स्थान पर जो कुछ देखा उससे उसके
ीवन की दिशा ही बदल गई। राजा ने देखा कि वह
थान शून्य और निर्जन पड़ा है। इन्द्रध्वज मे लगा
वशाल स्थाणु (काष्ठ) भूमि पर गिरा पड़ा है और उसे
ीमक चाट रही है। उस पर धूलि के ढेर जमे हुए है।
ाय, बैल और कुत्ते उस पर अपनी-अपनी देह-चिंताओ
ा स्वतन्त्रतापूर्वक निवारण कर रहे है। चारो ओर
न्दगी फैली हुई है और सारा वातावरण दुर्गन्धि से भरा
आ है ...।

क्षण भर राजा यह स्थिति देखता रह गया ओर
ोचता रह गया—हाय ! समय, तेरी बलिहारी है। एक
दिन इसी स्तम्भ की पूजा की जा रही थी, सुन्दर, रेशमी,
चित्र वस्त्रों से उसे सजाया गया था। झंडियो, घटियों

इस धूम-धाम से हुआ कि देवता भी इस शुभ प्रसंग के साक्षी बनने के लिये लालायित हो उठे। मदन मंजरी अपने पति के साथ चली गई।

कुछ समय पश्चात् काम्पिल्यपुर मे इन्द्रमहोत्सव का आयोजन किया गया। इस महोत्सव पर सारा नगर हर्ष और उल्लास से भर जाया करता था। इस वार भी ऐसा ही हुआ। सारा नगर किसी सजी हुई दुलहिन की भांति सज उठा। तोरण और वंदनवारो की छटा दर्शनीय थी। गली-गली और घर-घर सजाये गये थे। नगर के बीच मे एक विशाल प्रांगण था। उसके मध्य मे एक सुन्दर और विशाल चबूतरा था। उस चबूतरे पर ऊंची इन्द्रध्वजा खड़ी की गई। उसे बहुत सी रेशमी ध्वजाओं तथा झंडियों से सजाया गया। उस ध्वजा के चारो ओर नर-नारी हर्ष से विभोर होकर झूम-झूमकर नाचते और गाते थे। नाना प्रकार के वाद्यों की मधुर ध्वनि से वातावरण संगीतमय हो जाता था। यह एक ऐसा अवसर था, ज. प्रत्येक नगरवासी अपनी सारी पीडा या चिन्ता भूल जाता था और आनन्द में डूब जाता था।

इस महोत्सव के अवसर पर राजा द्विमुख ने अपने दामाद मालवपति चण्डप्रद्योत को भी सस्नेह आमंत्रित किया। मदनमंजरी सहित वे पधारे। इससे उस उत्सव की शोभा तथा आनन्द द्विगुणित हो गई। पूर्णिमा के दिन राजा ने इन्द्र ध्वजा की पूजा की और उसकी आरती उतारी। उसके वाद मंत्रियों, सेनापति तथा अन्य प्रमुख

६

साँझ-सवेरे

(प्रत्येक बुद्ध नरगति)

राजा सिंहरथ पवनवेग से भागते अपने अश्व को ोकने के लिए ज्यो-ज्यो वल्गा को खीचता, त्यो-त्यो वह श्व और भी अधिक तेजी से भागता। गान्धार देश का कच्छत्र शासक हैरान था। उसकी भृकुटि के एक ही अंग र सहस्रों और लाखों शीप आदर और भय से झुक ाया करते थे, किन्तु एक यह अश्व था कि मनमानी किये जा रहा था। राजा उसे रोकना चाहता, पर वह ौर भी अधिक तेजी से दौड़ता।

वह अश्व वक्र-शिक्षित था, वक्रगति था। किसी मित्र रेश ने दो अश्व उसे भेट किये थे और वह अपने पुत्र हित उन अश्वों की परीक्षा लेने के लिये वन मे निकल डा था। चला तो था अश्व की परीक्षा लेने, होने लगी वयं उसी के धैर्य और विवेक की परीक्षा।

हवा के पंख लगाकर उडते हुये अश्व पर सवार राजा हरथ वहुत दूर, अकेला निकल गया। राजकुमार और न्य सैनिक जाने कहाँ छूट गये वहुत पीछे। राजा पसीने-

और पताकाओं से सजे इस स्तम्भ की शोभा का वर्णन करना तक कठिन हो रहा था। धूप और दीप आदि की मादक गन्ध चारो ओर व्याप्त थी। और आज ? उस पवित्र स्तम्भ की यह भयानक दुर्दशा ?

क्षण भर राजा द्विमुख समय के इस परिवर्तन और जीवन के इस कटु, कठोर सत्य पर विचार करता रह गया।

गहन और गूढ विचार के उस एक ही दुर्लभ क्षण में राजा द्विमुख ने जान लिया कि संसार का दूसरा नाम है अनित्यता और क्षणभंगुरता। उसके अन्तर की जागी हुई चेतना ने उसे क्षणमात्र में ही बता दिया कि सब कुछ नाशवान है।

राजा द्विमुख जीवन और संसार से विरक्त हो गया। उसी क्षण उसने राज्य का त्याग कर दिया। देवताओं ने उन्हें मुनिवेश प्रदान किया और वे प्रत्येक बुद्ध बनकर पृथ्वी पर विचरण करने लगे।

ऐसे दुर्लभ क्षण हमारे जीवन मे भी अवश्य ही आते जाते रहते होंगे। काश ! हम अपनी अन्तश्चेतना से उन्हें जान पाते।

—उत्तरा० ६. अ कमल संयम टीका

, या कोई छल है, या मेरी ही मति मारी गई है—
क्कर आखिर क्या है ? पूछा उसने—

"भद्रे ! विस्मय का अन्त कीजिये। कृपया बताइये
के आप कौन है ? पूरा परिचय देने का कष्ट कीजिए।"

वह सुन्दरी कन्या मुसकराई, बोली—"परिचय की
बात पीछे, पहिले परिणय की बात होगी। इसी घड़ी
रे साथ पाणिग्रहण कर मेरा संकल्प पूर्ण कीजिये, शेष
सब बात बाद में होगी। विश्वास कीजिए।"

राजा को विश्वास करना नही पड़ा, वह सहज ही
हो गया। कन्या के व्यक्तित्व मे एक ऐसी छवि थी जो
विश्वास उत्पन्न करती थी।

जिन भगवान की साक्षी मे पाणिग्रहण हो गया।

राजा ने कन्या के कंगन पर लिखा हुआ नाम
पढा—कनकमाला—और फिर कहा—"अब हम जीवन
साथी बन गए। किन्तु तुम्हारा पूर्व परिचय जानने की
उत्कंठा बनी हुई है।"

कन्या ने तब बताना आरम्भ किया—

'बात पुरानी है। क्षितिप्रतिष्ठित नगर मे राजा
जितशत्रु राज्य करता था। कला प्रेमी था। एक बार
उसने एक चित्रशाला बनवाना आरम्भ किया। बहुत सारे
चित्रकार आए। उनमे एक बूढा चित्रकार भी था। अनु-
भव ने उसकी चित्रकारिता मे विशिष्टता उत्पन्न करदी
थी। विविध रंगो के मिश्रण और चित्रांकन मे वह
पारगत था।

पसीने, थकान से चूर-चूर हो गया। हारकर उसने लगाम ढीली छोड़ दी—जो होना हो, हो जाय।

ठीक हुआ। वक्र शिक्षित अश्व रास ढीली छोड़े जाने पर तुरन्त रुक गया। 'वक्र' शिक्षित था न, लगाम खींचे जाने पर उल्टा भागता था, लगाम ढीली छोड़े जाने पर ठहर गया।

जंगल सॉय-सॉय कर रहा था। राजा निपट अकेला था। सहायक कोई नहीं। किसी झरने के शीतल जल से उसने अपनी प्यास बुझाई और अपने ही हाथों से इधर-उधर से तोड़कर कुछ फल खा लिये। भूख भी बुझी।

राजा सिंहरथ वीर था, निर्भय था। भूख-प्यास जब शान्त हो गई तब वन की शोभा निरखने की सूझी। टहलता-टहलता एक पहाड़ी के शीर्ष पर जा चढ़ा। वहाँ एक सुन्दर महल देखकर उसे विस्मय हुआ—इस वन में, ऐसे एकान्त में, यह महल बनाकर भला कौन रहता होगा? कुतूहलवश वह महल में जा पहुँचा।

उस महल में राजा ने एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या को देखा, अकेली कन्या। आश्चर्य और बढ़ा। वह कुछ प्रश्न करे उससे पूर्व ही वह कन्या स्वयं बोली—

"आइये! स्वागत है। आपकी ही प्रतीक्षा थी।"

राजा को यह अजीब झमेला-सा लगा। भयानक जंगल, जंगल में महल, महल में अकेली सुन्दरी, और वह भी कहती है—आपकी ही प्रतीक्षा थी। कोई जादू

कुछ क्रोध से उसने पूछा—"तुम्हारे इस कथन का क्या अर्थ ? कौन सी खाट, और कैसे पाए ?"

कनकमजरी ने कहा—"राजन् ! इस संसार में मैंने चार विचित्र मूर्ख देखे है। जानना चाहते है कौन-कौन ?"

"हाँ, वही पूछ रहा हूँ।"

"तो सुनिए—पहला मूर्ख है यहाँ का राजा। उसने युवा और वृद्ध चित्रकारो को समान भूमि चित्राकन हेतु सौंपी है। भला एक वृद्ध चित्रकार, जिसका शरीर जर्जर हो चुका है, किसी युवा चित्रकार के समान उतना ही कार्य कैसे कर सकता है ? समान भूमि पर चित्र बनाने के लिए राजा उन्हे समान ही पारिश्रमिक देता है। इसलिए वह पहिला मूर्ख है—मेरी खाट का पाया।

"दूसरा मूर्ख है वह घुडसवार जो राजमार्ग पर उतनी तेजी से घोडा दौडाता जा रहा था कि उसकी लपेट मे कोई भी आ सकता था।

"तीसरा मूर्ख है मेरा पिता। क्योकि वह प्रतिदिन तभी शौच के लिये जाता है जब मैं भोजन लेकर आती हूँ। खाना गरम-गरम मिल सके, इसके लिये उसे चाहिए कि वह इस कार्य से पहिले से ही निवृत्त होकर बैठे।"

राजा मन ही मन कनकमजरी की चतुराई पर प्रसन्न हो रहा था। किन्तु ऊपर से झुंझलाहट बताते हुए बोला "अच्छा, वह चौथा मूर्ख कौन है भला ?"

'उस चित्रकार के एक कनकमंजरी नामक कन्या थी। प्रतिदिन अपने पिता के लिए वह घर से भोजन लाया करती थी। एक दिन वह भोजन लेकर राजमार्ग से आ-रही थी, उसी समय एक घुडसवार अपने घोडे को बहुत तेजी से दौड़ाता हुआ निकला। मार्ग में बच्चे, बूढे, स्त्रियाँ—सभी आ जा रहे थे। किन्तु उस घुडसवार को किसी की चिन्ता नही थी। कनकमंजरी ने उस घुडसवार की इस मूर्खता को देखा और महल मे पहुँची। उसका पिता अपनी बेटी को खाना लेकर आया देखकर शौच कर्म के लिए बाहर चला गया। यह उसका प्रतिदिन का ढर्रा ही बन गया था।

'कनकमंजरी पिता के लौटने की प्रतीक्षा मे बैठी थी। बैठे-बैठे उसने चित्रशाला की दीवार पर तूलिका से एक सुन्दर मयूरपिच्छ बना डाला। वह इतना सुन्दर बन पड़ा था कि साक्षात् मयूरपिच्छ ही पड़ा हो, ऐसा प्रतीत होता था।

'उसी समय राजा जितशत्रु उधर से आ निकला। उसने सुन्दर मयूरपिच्छ दीवार पर चिपका हुआ देखा तो उसे उठा लेने के लिये हाथ बढाया। कनकमंजरी यह देखकर हँस पड़ी और बोली—"मेरी खाट के चारों पाए पूरे हो गये।

'राजा को चित्र मे वास्तविक पिच्छ का भ्रम हुआ उसी से वह खीझ गया था। अब सुन्दरी कनकमंजरी ने जब यह रहस्यपूर्ण व्यंग किया तो उससे रहा न गया।

कनकमंजरी ने कहा—'स्वामी को नीद आ जाए तव कथा कहूँगी।' राजा ने सुन लिया। कहानी सुनने के लोभ मे वह झूठमूठ आँख वन्द करके ऐसे पड गया, जैसे सचमुच सो ही गया हो। रानी जानती थी कि राजा सोया नही है, सुन रहा है। उसने कथा प्रारम्भ की—

एक था वनिया। उसके एक कन्या थी, वहुत सुन्दर। जव वह युवती हुई तो उसका विवाह सम्वन्ध एक स्थान पर पिता ने, दूसरे स्थान पर माता ने और तीसरे स्थान पर उसके भाई ने कर दिया। विवाह की शुभ घडी एक ही थी। निश्चित समय पर तीन स्थानो से तीन वरातें आ पहुँची। अव समस्या उठ खडी हुई—एक वधू और तीन वर, विवाह किसके साथ हो?

समस्या का अस्थायी समाधान इस प्रकार हुआ कि उसी समय वधू को साँप ने डस लिया। एक वर ने सोचा कि प्रियतमा के वियोग मे अव जीने से कोई लाभ नही, और यह सोचकर वह उसी के साथ चिता पर चढ गया। दूसरे ने सोचा—विवाह करके वहू लेने आया था, अव विना वहू के कौन-सा मुँह लेकर घर जाऊँ? यह सोचकर वह उसी चिता की भभूत अपने शरीर पर रमा कर अवधूत वनकर विचरने लगा।

तीसरा वर जरा धुनी अधिक था, पुरुषार्थी भी था। अपनी भावी वधू को पुनर्जीवन प्रदान करने के उद्देश्य से वह देवाराधना करने लगा। देव प्रसन्न हुआ और उसने उस उपासक को संजीवनी प्रदान की। संजीवनी जव

"वह तो मेरे सामने ही खड़ा है। तुम्हे भी देखना हो तो किसी शीशे मे अपना मुँह देख लो जाकर। चौथा मूर्ख दिखाई दे जायगा।वह तो ऐसा मूर्ख है कि चित्र के रूप में अंकित किए गए मयूरपिच्छ को ही वास्तविक मानकर उसे लेने के लिए लपक पडा।

चचल, बुद्धिमती 'और रूपवती कनकमंजरी इतना कहकर खिलखिलाकर हँस पडी। खिसियाना राजा आगे बढ गया।

राजा आगे बढ तो गया, किन्तु उसे फिर पीछे भी लौटना पड़ा। चित्रकार के लौटने पर उसने कनकमंजरी की माँग अपने लिए उससे की। अन्धे को आँखे मिल गईं। बूढे, गरीब चित्रकार ने अपने और अपनी कन्या के भाग्य को सराहा और उसका विवाह राजा जितशत्रु के साथ कर दिया।

अपनी नई, सुन्दरी, चतुर रानी मे राजा का मन खूब रमा। इतना कि शेष रानियों को उससे ईर्ष्या होने लगी। किन्तु वे विवश थी। बस अवसर की तलाश मे रहती थीं कि किसी प्रकार उसकी ओर से राजा विमुख किया जाय।

उधर कनकमंजरी अनेक चतुराइयो से राजा को मोहित किए रहती थी। एक बार जब राजा उसके महल में आया और शयन करने के लिए पलंग पर लेट गया तब कनक की एक प्रिय दासी उसके पास आई और कहने लगी—'रात बहुत लम्बी है। इसे काटने के लिए कोई कहानी कहो।'

एक राजा को अपनी रानी के लिए आभूषण वनवाने थे। स्वर्णकारो को बुलाकर उन्हे राजा ने ऐसे भूमिगृह में रखा जहाँ सूर्य की किरण झाँक भी नही सकती थी। दिन-रात गहन अन्धकार रहता था, एक जैसा। स्वर्णकार मणि-रत्नो के जगर-मगर प्रकाश मे ही कार्य करते रहे।

जब साँझ घिरने लगी, तव एक स्वर्णकार ने अपने साथियों से कहा—"साँझ हो गई, अव कार्य समाप्त करें।"

दासी चतुर थी, चट पूछ वैठी—"उस भूगृह मे जब दिन-रात का पता ही न चलता था, तब उस स्वर्णकार को साँझ होने का ज्ञान क्यो कर हुआ ?"

दासी चतुर थी तो उसकी स्वामिनी कौन-सी कम चतुर थी। वोली—"अव तो नींद आ रही है। कल वताऊँगी।"

राजा फिर मन ही मन झल्लाया, किन्तु करता क्या ? उस समय तो चुपचाप सो गया, किन्तु दूसरे दिन फिर रानी कनकमंजरी के आवास में जा पहुँचा। दासी ने जब रानी से कल वाला प्रश्न दुहराया तब रानी ने शरारत भरा संक्षिप्त उत्तर दिया—"अरी, उस स्वर्णकार को 'रतोंधी' का रोग था। केवल दिन में ही उसे दिखाई देता था।"

दासी हँस पडी। राजा ने भी अपनी हँसी वडी कठिनाई से रोकी।

अब तीसरी कथा आरम्भ हुई—"दो चोर पकडे गये।

चिता पर छिड़की गई तव कन्या जी उठी। उसी के साथ वह पहला वर भी उठा। संयोगवश वह अवधूत भी उसी समय वहाँ आ पहुँचा। वधू के लिए तीनो मे फिर झगड़ा उठ खड़ा हुआ कि वधू किसे मिले।

कथा इस रोचक बिन्दु तक लाकर रानी ने एक अंगड़ाई ली और कहा—

"अव तो नीद आ रही है। शेष कथा कल कहूँगी।"

दासी तो परिणाम जानने के लिए उत्सुक थी ही राजा भी उत्सुक था। किन्तु दोनों ही विवश थे। रानी सो गई।

उत्सुकता का मारा राजा दूसरे दिन फिर कनकमंजरी के महल में जा पहुँचा।

वही नाटक दुहराया गया और फिर रानी ने कहा—
"अरे बिल्कुल सरल समाधान है—संजीवनी की शक्ति से कन्या को पुनर्जीवन प्रदान करने वाला उसका पिता हुआ, और जो चिता में से उसी के साथ पुनः उत्पन्न हुआ वह उसका भाई हो गया। पिता और भाई के साथ विवाह हो नही सकता। अतः नीति के अनुसार तीसरे वर को ही वह कन्या मिलनी चाहिए जो कि भभूत रमा कर अवधूत बन गया था।

एक कथा समाप्त हुई तो दूसरी आरम्भ हो गई। दासी ने आग्रह किया—

"रात बहुत लम्बी है, कोई दूसरी कथा कहिए।"

किया कि वे कनकमंजरी की प्रत्येक गतिविधि को चुप-चाप वडे ध्यान से देखे और उसकी सूचना देता रहे ।

कनकमंजरी उन व्यक्तियो मे से थी जो यह कभी भूलते नही कि जीवन परिवर्तनशील है । यदि आज कोई राजा है, तो कल वह रक भी हो सकता है । वह स्वय एक निर्धन चित्रकार की वेटी थी । भाग्यवश वह राजरानो वन गई थी । किन्तु वह सदैव अपनी आर-म्भिक स्थिति को याद रखती थी और भविष्य मे किसी भी सम्भावित परिवर्तन के लिये प्रस्तुत रहती थी ।

उसी उद्देश्य से वह प्रतिदिन अपने महल के एक एकान्त प्रकोष्ठ मे अकेली वैठकर चिन्तन किया करती थी । एक दिन ऐसे ही अवसर पर कुछ दासियो ने देखा—कनकमजरी एक प्रकोष्ठ मे फटे-पुराने कपडे पहने वैठी है और कुछ वोल रही है । उसके शब्द उन्हे स्पष्ट सुनाई नही पडे । उन अवोध दासियो ने ये रंगढग देखे तो दौड-कर अपनी स्वामिनियो से जाकर कहा—"कनकमंजरी कुछ जादू-टोना कर रही है ।"

रानियाँ चुपचाप झांकने लगी । जो दृश्य उन्होने देखा वह देखकर वे राजा के पास भागी-भागी गई और कहा—"कनकमजरी जादू-टोना कर रही है । वह चुडैल है । इसी प्रकार वह आप पर अपना प्रभाव वढाती जा रही है ।"

राजा भी आया । एक छिद्र मे ऑख गड़ाकर उसने देखा कि अवश्य ही कनकमंजरी फटे-पुराने कपडे

राजा ने लकडी की पेटी में वन्द करके उन्हें समुद्र में फिकवा दिया। कुछ दिन तक इधर-उधर वहती हुई वह काष्ठ मंजूषा आखिर किसी किनारे जा लगी। एक व्यक्ति ने उसे वाहर खीचा और खोल डाला। दो आदमियो को उसमे से वाहर निकला देख कर उसने सहज ही सहानुभूतिपूर्वक पूछा—"वन्धु ! आप लोग कितने दिन से इस मंजूषा मे वन्द थे ?"

'इस मजूषा में वन्द हुए हमे आज चौथा दिन है।" एक चोर ने कहा।

दासी फिर पूछ वैठी - "मंजूषा में वन्द उस व्यक्ति को कैसे मालूम हुआ कि उस दिन चौथा दिन था ?"

"कल वताऊँगी, आज तो थक गई।" कहकर रानी सो गई। अगले दिन उन्ही परिस्थितियों में रानी ने बताया—"अरी पगली ! उसे 'चौथिया बुखार' आता था। उस दिन बुखार की बारी होने से वह जान गया कि आज चौथा दिन है।"

यही क्रम चलता रहा। चतुर और बुद्धिमता रानी कनकमंजरी इसी प्रकार की रोचक कथाएँ सुना-सुना कर राजा के कौतूहल को जाग्रत किए रहती और राजा प्रतिदिन उसके महल मे जाता। शेष रानियाँ जल-भुन कर खाक हुई जा रही थी। वे सोचती—'आखिर इस नई रानी मे ऐसी क्या बात है कि राजा हमारी ओर अव देखता भी नही। उन्होने अपनी दासियो को सावधान

और श्रद्धापूर्वक उसका पालन करते हुए सुखपूर्वक जीवन-यापन करने लगा।"

"अरे, यह तो ठीक, किन्तु कभी तुम्हारा परिचय तो मुझे मिल ही नहीं सका। मैं उस कनकमंजरी की नहीं, अपनी कनकमाला की कथा सुनना चाहता हूँ।" राजा सिंहरथ ने आग्रह किया।

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कछु होय आपने यह कथन तो सुना ही होगा? अपनी कथा भी सुनाती हूँ, अपना परिचय भी देती हूँ, धैर्य रखिये।" कहकर कनकमाला हँसी और बताने लगी—

"कनकमंजरी का पिता मृत्यु प्राप्त कर व्यंतर जाति मे एक देवता बनकर उत्पन्न हुआ। कनकमंजरी भी समय आने पर मृत्यु के उपरान्त वैताढ्य पर्वत पर दृढशक्ति नामक विद्याधर की पुत्री के रूप मे उत्पन्न हुई नाम था उसका—कनकमाला।"

यह सुनकर राजा ने अपनी दृष्टि कनकमाला के कंगन पर डाली और कुछ समय विस्मयपूर्वक आगे की कथा सुनने के लिए उत्सुक हुआ। कनकमाला कह चली—

"राजन्! वह कनकमाला धीरे-धीरे, दूज के चन्द्रमा की भाँति वृद्धि प्राप्त करने लगी। जब वह एक सुन्दरी युवती हो गई तब 'इन्द्र' नामक एक युवक विद्याधर उसका अपहरण करके उसे इस पर्वत पर ले
एक महल बनवा कर वह वही रहने

बैठी है। किन्तु वह धीरे-धीरे बोल क्या रही है, यह उसने जानना चाहा। बड़े ध्यान से उसने कान लगाये। तब उसे सुनाई पडा—'समय और संसार परिवर्तनशील है। हे मेरी आत्मा! तू यह कभी भूल मत जाना। तू आज रानी बनी बैठी है। तेरे पास वैभव की कोई कमी नहीं। दास-दासियाँ तेरे इशारे पर नाचती है। किन्तु तू है तो वही एक निर्धन चित्रकार की पुत्री! ये हीरे-मोती, ये मुक्तामाणिक, सब आज है, हो सकता है कि कल न रहे। और ये सब बाहरी शरीर की शोभा के लिए है। हे आत्मन्! तेरी वास्तविक शोभा तो तेरे अपने गुणों से ही है—तेरे शील से, तेरे विनय से।"

राजा ने जब यह देखा-सुना तो शेष रानियों से कहा—

"कुछ समझा तुमने? अरे, तुमने केवल ईर्ष्या करना ही सीखा है। सद्गुण किसे कहते है, विवेक क्या होता है, आत्मज्ञान क्या वस्तु है, यह तुमने कभी जाना ही है। यह कनकमंजरी, जिस पर तुम लाछन लगा रही है, सच्चा हीरा है, जबकि तुम लोग काच हो।"

राजा ने कनकमंजरी को अब पटरानी बना दिया।

इतनी कथा सुनाकर कनकमाला ने राजा सिंहरथ की ओर एक प्रेमभरी दृष्टि डाली और कहा—"स्वामी, उस कनकमंजरी की सद्प्रेरणा से राजा जितशत्रु ने विमल घोप नामक आचार्य से श्रावकधर्म अंगीकार किया

"जैसे ही दृढशक्ति साधु बने उन्हें पर्वत पर महल और महल में सुखपूर्वक टहलती हुई कनकमाला दीख पडी। उन्हे वडा विस्मय हुआ। उनके विस्मय को दूर करने के लिए वह देवता प्रकट हुआ और उसने वताया–

"यह मेरी माया थी।"

"एक मधुर स्मित साधु के चेहरे पर छा गया और एक ही वाक्य उनके मुख से निकला 'तुम्हारी माया से हमारी महामाया कट गई। वहुत अच्छा हुआ।' इतना कहकर साधु नन्दीश्वर द्वीप की ओर चले गए।

"तव वह कनकमाला उस यक्षदेवता से वोली – 'मेरे पिता तो साधु वनकर चले गये। अव आप ही मेरे पिता है। कृपा कर मुझे ऐसा पति दीजिए जो सुन्दर, वलवान और सुयोग्य हो।'

"तुम्हारी इच्छा शीघ्र ही पूर्ण होगी, पुत्री ! सुखी रहो, निश्चिंत रहो। कुछ ही दिनो मे राजा सिंहरथ यहाँ आएगा। वही तुम्हारा पति होगा।"—यह कहकर यक्षदेव अदृश्य हो गया।

कनकमाला ने इस प्रकार अपना पूर्ण परिचय राजा सिंहरथ को दिया। उसके वाद वे दोनो लगभग एक मास तक वडे सुखपूर्वक उस पर्वत पर विहार करते रहे।

एक दिन सिंहरथ को अपने राज्य की सुधि आई। चिन्ता हुई कि वहाँ क्या हो रहा होगा? तव उसने अपनी नववधू से कहा–"वहुत समय वीत गया। चलो, अपने राज्य मे चले।"

से विवाह करने की उसकी अभिलाषा थी। इस प्रयोजन से उसने वेदी का निर्माण किया और विवाह की तैयारी करने लगा।

"किन्तु स्वामी ! विधि का विधान तो कुछ और ही था। विवाह की तैयारियाँ जब हो रही थी उसी समय कनकमाला का भाई 'कनकज्योति' वहाँ आ पहुँचा। दोनो युवकों में युद्ध हुआ और दोनो ने एक दूसरे को समाप्त कर दिया।

राजन्, मेरे स्वामी ! कनकमाला बहुत घबरा गई। किन्तु उसी समय एक देवता वहाँ प्रकट हुआ और कहने लगा—'मैं तुम्हारा पूर्व भव का पिता हूँ। तुम निर्भय होकर यहाँ रहो। कोई कष्ट तुम्हे नही होगा। मैं सदैव तुम्हारी रक्षा करूँगा।'

"जीवन संयोग और वियोग की एक अविच्छिन्न परम्परा है। कनकमाला का पिता दृढशक्ति अपनी पुत्री को खोजता हुआ यहाँ आ पहुँचा। किन्तु उसने आकर ा कि कनकज्योति, उसका पुत्र, मरा हुआ पड़ा है, ,, पुत्री कनकमाला का सिर भी कटा हुआ एक वृक्ष पर लटक रहा है। पुत्र और पुत्री की यह अवस्था देख-कर उसके हृदय को गहरा आघात लगा। संसार से उसे घोर विरक्ति हो गई। इस संसार की नश्वरता पर विचार करते-करते उसे पूर्वजन्म की स्मृति हो आई और वह प्रतिबुद्ध होकर संसार का त्याग करके साधु वन गया।

"जैसे ही दृढशक्ति साधु बने उन्हें पर्वत पर महल और महल मे सुखपूर्वक टहलती हुई कनकमाला दीख पडी। उन्हे वडा विस्मय हुआ। उनके विस्मय को दूर करने के लिए वह देवता प्रकट हुआ और उसने वताया–

"यह मेरी माया थी।"

"एक मधुर स्मित साधु के चेहरे पर छा गया और एक ही वाक्य उनके मुख से निकला 'तुम्हारी माया से हमारी महामाया कट गई। बहुत अच्छा हुआ।' इतना कहकर साधु नन्दीश्वर द्वीप की ओर चले गए।

"तव वह कनकमाला उस यक्षदेवता से वोली – 'मेरे पिता तो साधु बनकर चले गये। अब आप ही मेरे पिता हैं। कृपा कर मुझे ऐसा पति दीजिए जो सुन्दर, वलवान और सुयोग्य हो।'

"तुम्हारी इच्छा शीघ्र ही पूर्ण होगी, पुत्री! सुखी रहो, निश्चिन्त रहो। कुछ ही दिनों मे राजा सिंहरथ यहाँ आएगा। वही तुम्हारा पति होगा।"—यह कहकर यक्षदेव अदृश्य हो गया।

कनकमाला ने इस प्रकार अपना पूर्ण परिचय राजा सिंहरथ को दिया। उसके वाद वे दोनो लगभग एक मास तक वडे सुखपूर्वक उस पर्वत पर विहार करते रहे।

एक दिन सिंहरथ को अपने राज्य की सुधि आई। चिन्ता हुई कि वहाँ क्या हो रहा होगा? तब उसने अपनी नववधू से कहा—"बहुत समय वीत गया। चलो, अपने राज्य मे चले।"

से विवाह करने की उसकी अभिलाषा थी। इस प्रयोजन से उसने वेदी का निर्माण किया और विवाह की तैयारी करने लगा।

"किन्तु स्वामी ! विधि का विधान तो कुछ और ही था। विवाह की तैयारियाँ जब हो रही थी उसी समय कनकमाला का भाई 'कनकज्योति' वहाँ आ पहुँचा। दोनो युवकों में युद्ध हुआ और दोनों ने एक दूसरे को समाप्त कर दिया।

राजन्, मेरे स्वामी ! कनकमाला बहुत घबरा गई। किन्तु उसी समय एक देवता वहाँ प्रकट हुआ और कहने लगा—'मैं तुम्हारा पूर्व भव का पिता हूँ। तुम निर्भय होकर यहाँ रहो। कोई कष्ट तुम्हे नहीं होगा। मैं सदैव तुम्हारी रक्षा करूँगा।'

"जीवन संयोग और वियोग की एक अविच्छिन्न परम्परा है। कनकमाला का पिता दृढ़शक्ति अपनी पुत्री को खोजता हुआ यहाँ आ पहुँचा। किन्तु उसने आकर देखा कि कनकज्योति, उसका पुत्र, मरा हुआ पड़ा है, तथा पुत्री कनकमाला का सिर भी कटा हुआ एक वृक्ष पर लटक रहा है। पुत्र और पुत्री की यह अवस्था देख-कर उसके हृदय को गहरा आघात लगा। संसार से उसे घोर विरक्ति हो गई। इस संसार की नश्वरता पर विचार करते-करते उसे पूर्वजन्म की स्मृति हो आई और वह प्रतिबुद्ध होकर संसार का त्याग करके साधु बन गया।

ाके पीछे-पीछे चले उसके सैकडो सामन्त-सरदार और
ख़ों सैनिक-सेवक।

राजा की सवारी जब एक विशाल आम्रवृक्ष के नीचे
निकली, तब राजा ने उस वृक्ष की एक महकती हुई,
जा और सुन्दर मजरी को तोड लिया और उसकी
दक सुरभि का आनन्द लेता हुआ आगे बढ गया।
जा के पीछे-पीछे जो विशाल लवाजमा चला आ रहा
, उसमे सहस्रो व्यक्ति थे, और उसमे से प्रत्येक व्यक्ति
राजा की देखा-देखी एक-एक मंजरी उस वृक्ष मे से तोड
; यहाँ तक कि पीछे आने वाले लोगो को जब मंजरी
मिली तो किसी ने उस वृक्ष की कोपले, किसी ने पत्ते
र किसी ने शाखाएँ ही तोड़ ली।

इस प्रकार वह विशाल, हरा-भरा, नवमंजरी से
ा-फदा महकता हुआ वृक्ष एक ठूंठ मात्र रह गया।

साँझ होते-होते जब राजा लौटा तो उसने उस वृक्ष
वह स्थिति देखी। पूछा, जाना और समझा। उसका
तन प्रबुद्ध हुआ—"आह! अभी प्रातःकाल तक जो
अपने पूर्ण यौवन और सौदर्य से दीप्त था, वह अब
झ होते-होते मात्र एक नग्न, कंकाल सदृश ठूठ ही रह
ा! हाय, संसार की गति बडी विचित्र है। उसमे कुछ
स्थायी नही, सभी कुछ नाशवान है, अस्थिर है।
ज्य का यह रूप, यह यौवन, यह वैभव—सभी कुछ
र है, व्यर्थ है। सवेरे तक फला-फूला यह आम्रवृक्ष
ा प्रकार साँझ तक नोंच लिया गया, उसी प्रकार

कनकमाला को तो इसमे कोई आपत्ति नही थी। किन्तु उसी समय वह यक्ष वहाँ आया और उसने कहा—'राजन् ! यह मेरी पुत्री है, इससे मुझे बडा मोह है। इसे यही रहने दीजिए। मैं आपको आकाशगामिनी विद्या देता हूँ। इसके बल से आप जब भी चाहे, क्षणमात्र मे यहाँ आ सकेगे।'

राजा सिंहरथ वह विद्या प्राप्त कर अपने राज्य में जा पहुँचा। राजा के मुख से सारी घटना सुनकर सभी लोग अत्यन्त हर्षित हुए।

अब राजा सिंहरथ जब भी चाहता तब अपनी विद्या के प्रयोग से उस पर्वत पर जा पहुँचता। प्राय' वह दिन मे अपने राज्य में रहकर राज्य कार्य देखता और रात्रि मे कनकमाला के समीप उस नगराज (पर्वत) पर जा पहुँचता। उस 'नग' पर राजा के प्रायः आने जाने के कारण लोग 'नगपति' के नाम से भी सम्बोधित करने लगे। धीरे-धीरे 'सिंहरथ के स्थान पर उसका नाम 'नगपति' ही विख्यात हो गया। राजा ने उस पर्वत पर एक नगर भी बसाया, उसी को अपनी राजधानी भी बना लिया और उसका नाम रख दिया 'नगतिपुर।'

एक बार वसन्त ऋतु थी। प्रकृति-सुन्दरी की शोभा बस देखते ही बनती थी। वसन्तोत्सव की धूम मच गई। नव-मंजरियों से सुशोभित आम्रवनो की शोभा निरखने के लिए सारी प्रजा उमड़ पड़ी थी। राजा भी चला, और

७

चक्री और धर्मचक्री

यह कथा एक ऐसे समर्थ चक्रवर्ती राजा की है, जिसने अपनी समस्त रिद्धि-सिद्ध, सत्ता और शक्ति, साधन एवं सम्पत्ति का उपयोग दुराचार के लिए ही किया और परिणामत: सातवे नरक की दुस्सह पीड़ा भोगने के लिए उसे जाना पड़ा।

चक्रवर्ती था ब्रह्मदत्त। बुद्धि उसकी भ्रष्ट हो गई थी। अथवा कहा जाय कि अपनी बुद्धि और ज्ञान का उपयोग उसने भोग विलास के लिए ही करके अपनी आत्मा का घोर अकल्याण कर डाला।

एक बार उसने अपने राज्य में घोषणा कराई—'दासो मृगी मरालौ चांडालौच त्रिदशौ तत:'—इस श्लोक की जो ठीक पूर्ति कर देगा उसे आधा राज्य प्रदान किया जायगा।

राज्य के प्रत्येक व्यक्ति ने अपनी बुद्धि पर जोर डाला, प्रयत्न किया, किन्तु कोई श्लोक की पूर्ति न कर सका। एक दिन एक सामान्य कृषक राज-सभा में आया और

प्राणी के जीवन-वृक्ष को भी कराल काल एक दिन तोड़ लेगा ।"

राजा चिन्तन की उच्चतम स्थिति पर जा पहुँचा। उसे जातिस्मरण ज्ञान हुआ। मन प्रतिबुद्ध हो गया।

तत्क्षण पुत्र को राज्य सौंपकर वह वन में चला गया। देवताओं ने उसे साधु-वस्त्र प्रदान किए।

राजा नग्गति अब प्रत्येक बुद्ध नग्गति बनकर पृथ्वी पर विचरण करने लगे।

—उत्तरा० ९ कमलसंयमी टीका

करने वाले विरागी मुनि को इस भूलोक के छोटे-से राज्य से क्या प्रयोजन ? मुनि बोले—

"राजन् ! तुम्हारी यह राज्य-रिद्धि तो आत्मा को भटकाने वाली है। सच्ची सम्पदा तो ज्ञान-दर्शन और चारित्र ही है। उसे साधो।"

"किन्तु बन्धुवर ! इस राज्य-रिद्धि के लिए तो लोग भीषण प्रयत्न करते है, कर्म-कुकर्म कुछ नही छोड़ते, भाग्य से ही यह प्राप्त होती है।"

"राजन् ! आज तुम्हे यह जो रिद्धि प्राप्त हुई है, वह तुम्हारे पूर्वभवों के तपोबल के ही कारण। तुम्हे अब जाति-स्मरण ज्ञान हुआ है तो उसका लाभ भावी भवों को सुधारने मे लगाना चाहिए, न कि इस संसार के बन्धनों को जकडने मे। देखो, मैं तुम्हे अपने पूर्वभव की कथा कुछ विस्तार से सुनाता हूँ, ताकि तुम विचार कर सको।"

यह कहकर मुनि पूर्वभवों की कथा सुनाने लगे। राजा अनमने भाव से सुनने लगा। मुनि ने कहा—

यहाँ अपने चौथे भव की बात है। दुर्भाग्य अथवा दुर्मतिवश हमने साधुवेश की निन्दा की और इस पापकर्म के परिणामस्वरूप हम काशी मे भूतदत्त नामक चाड़ाल के घर मे चित्र तथा संभूति नाम से भाई बनकर उत्पन्न हुए। उस समय वहाँ शख नामक राजा राज्य करता था। नमुचि नामक उसका मंत्री था।

उसने श्लोक की पूर्ति करते हुए कहा—'एषा पश्चिमा जातिरन्योन्यस्य विमुक्तयोः ।

श्लोक की पूर्ति ठीक थी । राजा प्रसन्न हुआ। उसने कृषक को आधा राज्य देना चाहा, तब वह कृषक बोला—

"महाराज ! मैं तो अपढ, निर्धन किसान हूं। मुझे राज्य से क्या लेना-देना और श्लोक से क्या मतलब ? मैं तो अपने खेत पर हल चला रहा था और इस पद की प्रथम पंक्ति गुनगुना रहा था कि समीप ही कायोत्सर्ग करते हुए एक मुनिवर ने पद की यह दूसरी पंक्ति बोली। वही मैंने आपको आकर सुना दी ।"

राजा दौडा-दौड़ा मुनि के पास पहुँचकर कहने लगा—"हे बन्धु ! एक दिन मैं एक पुष्प की सुरभि का आनन्द ले रहा था । विचित्र था वह पुष्प और अवर्णनीय थी उसकी सुरभि ! उस सुमन-सौरभ का प्रभाव मुझ पर कुछ ऐसा पडा कि मुझे मूर्च्छा आ गई । जब चैतन्य हुआ तो मुझे जाति-स्मरण ज्ञान हुआ और सौधर्म देवलोक के भव सहित पाँचों भवों की मुझे स्मृति आ गई । तुम मेरे उन पाँचो भवो के बन्धु हो । स्मृति जाग्रत होने पर मैंने तुम्हें खोजना चाहा और उसी प्रयोजन से यह पद प्रसारित किया था । मेरा प्रयोजन सिद्ध हुआ, तुम मिल गये, अब आओ, हम दोनों मिलकर इस राज्य का सुख भोगें।"

किन्तु आत्म लोक के अनन्त साम्राज्य पर शासन

चाडाल तो चाडाल ही ठहरा। इस वात की जानकारी
ते ही चाडाल भूरादत्त ने मंत्री को मार डालने की
नी। किन्तु संयोगवश मंत्री वहाँ से बचकर भाग निकला
र हस्तिनापुर मे जाकर सनत्कुमार चक्रवर्ती के यहाँ
त्रिपद पर कार्य करने लगा।

दोनों चाडाल-पुत्र कला-प्रवीण हो चुके थे। एक दिन
वीणा लेकर नगर में घूम रहे थे। वीणा के मधुर नाद
जो भी सुनता, वह मग्न हो जाता। इतना मधुर और
कर्षक था, उनका वीणा-वादन। किन्तु उच्च कुलाभि-
नी कुछ लोगो को यह वात बुरी लगी। उन्होने राजा
शिकायत की। राजा ने उन चांडाल-बन्धुओ को नगर-
वेश न करने की आज्ञा दे दी।

एक वार कौमुदी-महोत्सव का अवसर था। जन-जन
ानन्द और उल्लास में डूबा था। चाडाल-बन्धु भी
पने को रोक न सके। बुरका ओढ़कर, वीणा लेकर वे
गर मे प्रविष्ट हुए और वीणा बजाने लगे। फिर वही
श्रुति हुई। उनकी वीणा के स्वरो ने लोगो को पागल
ना दिया। श्रोताओ को वडी उत्सुकता हुई कि गन्धर्वों
ी भांति ऐसी मधुर वीणा बजाने वाले ये लोग कौन हो
कते हे। अतः उन्होने उन दोनो का बुरका हटा दिया।

दूसरे की क्षण चीख-पुकार मच गई—छी! छी!
न चाडालो ने हमे भ्रष्ट कर दिया, मारो इन्हे।

बेचारे चाडाल-कलाकारों की फिर तो वडी दुर्गति

अब संयोगवश उस मंत्री का, राजा की पटरानी के साथ प्रेम हो गया और उसके सम्बन्ध अवैध बन गए। यह तो तुम जानते ही हो कि पापकर्म चाहे जितनी गुप्त रीति से किये जाएँ, किन्तु वे कभी छिपते नही। अस्तु, राजा को धीरे-धीरे उस स्थिति का ज्ञान हो गया। वह चाहता तो मंत्री को सरे बाजार भीषण से भीषण दण्ड दे सकता था। किन्तु ऐसा करने पर उसकी प्रतिष्ठा पर आघात पहुँचता। अत उसने उस भूतदत्त चाडाल को आदेश दिया कि यह गुप्त रीति से नमुचि का काम तमाम कर दे।

भूतदत्त ने विचार किया—मेरे पुत्र कुशाग्रबुद्धि है। किन्तु चांडाल होने के कारण कोई इन्हे शिक्षा नही देता। यह अवसर अच्छा है। यदि मंत्री मेरे पुत्रो को शिक्षित करना स्वीकार कर ले, तो मैं उसे जीवनदान दूँ।

मरता क्या न करता ? मंत्री ने चाडाल का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया चांडाल भूतदत्त ने उसे अपने घर में तलघर में छिपाकर रख लिया और बालको की शिक्षा आरम्भ हुई। शीघ्र ही दोनो बालक सकल कलाओं में पारंगत हो गए।

राजन् ! कहते है न कि कितना भी प्रयत्न करो, कुत्ते की पूँछ सीधी नही होती। इसी प्रकार दुर्व्यसनी पुरुष का व्यसन भी सहजता से छूटता नही। मंत्री चांडाल के घर मे रहकर भी अपने आचरण पर अंकुश न लगा सका और चांडाल-पत्नी से उसके अनुचित सम्बन्ध बन गए।

मन्त्री के आदेश का पालन हुआ। मुनि का बडा तिरस्कार हुआ। इस भीषण अपमान से मुनि क्रुद्ध हो गए। उन्होने अपने मुख से तेजोलेश्या प्रकट की। अग्नि की भीषण विनाशकारी लपटे उठने लगी। नागरिक हाहाकार करने लगे। राजा को जब इस विपत्ति की सूचना मिली तो वह दौडा-दौडा आकर मुनि के चरणो मे गिरकर क्षमायाचना करने लगा—"हे मुनिवर! आप तो क्षमा के सागर है।"

चित्र मुनि को जब यह घटना विदित हुई, तब वे भी वहाँ आए और उन्होने शास्त्रवचनो की स्मृति दिलाकर संभूति मुनि के क्रोध को शान्त किया। चक्रवर्ती सनत्कुमार की सारी प्रजा मुनि के क्रोध की अग्नि मे स्वाहा होने से बच गई।

मुनियो ने विचार किया—उस क्रोध का मूल कारण यह शरीर ही है। अतः यह विचार कर उन्होने अनशन ग्रहण कर लिया।

एक दिन चक्रवर्ती की रानी सुनन्दा मुनिवन्दन करके आई। वन्दन करते समय उसके केशों की एक लट संभूति मुनि के चरणों को स्पर्श कर गई। मुनि के हृदय में मोह जाग गया। उन्हे विचार आया—इस तप के फलस्वरूप आगामी भव मे यदि ऐसा सुन्दर सुकुमार स्त्री रत्न प्राप्त हो तो कितना अच्छा हो!

चित्त मुनि को जब संभूति मुनि की इस कामना का ज्ञान हुआ तो उन्होने उन्हें समझाने का प्रयत्न किया—

हुई। लोगों ने उन्हे मार-मार कर अधमरा करके नगर से बाहर खदेड़ दिया।

उधर उन चाण्डाल-बन्धुओं ने विचार किया कि जब लोग हमारे इस शरीर से इतनी घृणा करते है, तब ऐसे इस शरीर को रखने से क्या लाभ। यह सोचकर उन्होंने आत्महत्या करने का निश्चय कर डाला। वे एक पर्वत पर जा चढ़े कि वहाँ से कूद कर प्राण-त्याग करदें। किन्तु वे ऐसा कर न सके। उन्हें एक मुनि मिले। मुनि ने उन्हे समझाया —

"इस प्रकार शरीर का त्याग करने से कोई लाभ नही। भाई! शरीर का त्याग ही करना है तो तपस्या करके आत्मा का कल्याण साधते हुए ही करना चाहिए।"

मुनि का कथन उचित था। चित्र और संभूति को यह ठीक लगा। उन्होंने दीक्षा ग्रहण करली और तप की आराधना करते हुए विचरने लगे। विचरते-विचरते वे एक बार हस्तिनापुर के समीप आ पहुँचे।

एक दिन संभूति मुनि मासक्षमण तप के पारणे हेतु नगर में गए। मन्त्री नमुचि की दृष्टि उन पर पडी। साधु वेश में होते हुए भी उसने उन्हे पहचान लिया। अब उसे भय हुआ कि ये मुनि तो मेरे सारे पापकर्म को जानते हैं। यदि इन्होने किसी के सामने मेरे पापकर्म को प्रकट कर दिया तो बुरा होगा। अत. उसने राजसेवकों को आदेश दिया—"इस मुनि को धक्के देकर नगर से बाहर निकाल दो।"

चित आसक्ति को ताड़ गया। एक कोकिल और एक कौए को लेकर वह अन्त:पुर मे गया और उनकी गर्दन मरोड़ते हुए उसने कहा—"जो व्यभिचार करेगा, उसे मैं इसी प्रकार विनष्ट कर दूँगा।"

सिंह का पुत्र सिंह ही होता है, यह बात दीर्घ जानता था। उसने एकान्त मे रानी से कहा—

"यह बालक हमारे लिए भय का कारण है। इसे अपने मार्ग मे हटाना ही होगा।"

"हाय! तुम ऐसी बात कैसे करते हो?"—असती रानी चूलनी ने कहा—"मैं अपने पुत्र की मृत्यु को कैसे देख सकती हूँ?"

"मैं रहूँगा तो तेरे बहुत-से पुत्र हो जायँगे। तू किसी एक को चुन ले। या तो मैं नहीं, या ब्रह्मदत्त नही।"

काम के वशीभूत हुए मनुष्य को कर्तव्य-अकर्तव्य का कोई भान नही रहता, राजन्! रानी चूलनी भी विषयासक्त हो गई थी। उसने कहा—"ठीक है, लोक मे निन्दा न हो उस प्रकार किसी गुप्त रीति से यह कार्य हम कर डालेंगे।"

दीर्घ और चूलनी ने यह षड्यन्त्र रचा कि ब्रह्मदत्त का विवाह करके उसे जब अपनी वधू के साथ शयन करने भेजा जायगा, तब उसके महल मे आग लगा दी जायगी और उसे समाप्त कर दिया जायगा। उस प्रयोजन से उन्होंने चुपचाप एक लाक्षागृह का निर्माण भी करा

"यह उचित नहीं । उस वृथा मोह पर विजय प्राप्त करो और अपने चित्त को धर्म में दृढ करो। किन्तु संभूति मुनि का ध्यान उस ओर से हट न सका। समय आने पर मृत्यु को प्राप्त कर वे दोनों मुनि सौधर्म-देवलोक में देवरूप में उत्पन्न हुए।

राजन् ! यह तो हुई एक भव की कथा। अब इस चित्र का जीव देवलोक से च्यवन कर पुरिमताल नगर में एक श्रेष्ठि के यहाँ जन्मा। वह मैं था। संभूति का जीव कापिल्य नगर मे ब्रह्मराज की रानी चूलनी के गर्भ से चौदह स्वप्न देखे जाने के पश्चात् स्वर्णवर्ण वाला ब्रह्मदत्त नामक राजकुमार होकर जन्मा। वह तुम थे। ब्रह्म-राज के चार मित्र राजा थे—काशी का राजा कटक, हस्तिनापुर नरेश केनरदत्त, कोसलराज दीर्घ तथा चंपा-पति पुष्पचूल। ये पांचो मित्र अपने अन्तःपुर सहित एक एक वर्ष एक दूसरे के यहाँ रहकर आनन्दपूर्वक काल-यापन करते थे।

एक बार ये पांचों मित्र काम्पिल्यपुर मे निवास कर रहे थे। उस समय अचानक ब्रह्मराज की मृत्यु हो गई। ब्रह्मदत्त राजकुमार अभी छोटा था, अतः शेष चारो मित्रों ने क्रमशः वह बड़ा हो जाय, तबतक उसके राज्य की रक्षा करने का भार स्वयं पर लिया। प्रथम वर्ष मे यह भार दीर्घ ने वहन किया। उस समय दीर्घ का मन रानी चूलनी मे आसक्त हो गया। ब्रह्मदत्त उस समय अल्पवय का था, किन्तु फिर भी अपनी माता और दीर्घ की अनु-

था। अतः उसने विवाहोपरान्त अपनी पुत्री के स्थान पर एक दासी को भेज दिया।

दीर्घ और चूलनी ने समझा कि उनका दावँ ठीक पडा है। रात्रि मे राजकुमार और उसकी वधू को घोर निन्द्रा मे सोया जानकर उन्होने अपने सेवको को लाक्षागृह जलाकर भस्म कर देने का आदेश दे दिया।

आग की लपटे उठने लगी और सारे महल को निगल जाने के लिए चारो ओर फैलने लगी। ब्रह्मदत्त को कुछ पता नही था, वह किंकर्तव्यविमूढ हो गया। किन्तु उसी समय वरधनु ने एक पत्थर की शिला को हटाकर उससे कहा—"राजकुमार! चिन्ता न करे। आपकी सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध है। इस गुप्त मार्ग से शीघ्र निकल चलिए।"

मार्ग में वरधनु ने राजकुमार के सारे षड्यन्त्र की बात बताई। वे दोनों साधु वेश धारण कर, गुरु-शिष्य बनकर वहाँ से चल निकले। दीर्घ को जब राजकुमार के बच निकलने की बात मालूम हुई, तब उसने सैनिकों को उसके पीछे दौडाया, किन्तु वे सैनिक उसकी धूलि को भी न पा सके। देश-देश मे विचरण करते हुए वे ब्रह्मदत्त ने बन्धुमती, श्रीकान्ता, विशाखा, रत्नावली आदि अनेक राजकन्याओ से विवाह किया और अनेक प्रकार की विद्याएँ प्राप्त की।

इसी प्रकार घूमते-फिरते ब्रह्मदत्त अपने स्वर्गीय पिता के मित्र काशीनरेश कटक के पास आ पहुँचा। कटक ने

लिया किन्तु कहा जाता है कि 'जाको राखे साँइयाँ, मारि सकै नहि कोय'—तो ब्रह्मदत्त की रक्षा के लिए राज्य का वृद्ध और राजभक्त मंत्री धनु आगे आया। उसे इस षड्यन्त्र का पता चल गया। उसने अपने मन मे दृढ निश्चय कर लिया कि चाहे प्राण चले जायँ, किन्तु वह अपने स्वामी के पुत्र की रक्षा अवश्य करेगा।

अपने इस निश्चय के अनुसार धनु मंत्री ने दीर्घ से छुट्टी माँगते हुए कहा—

"प्रभु ! मैं अब बहुत वृद्ध और साथ ही अशक्त हो गया हूँ। अब मुझे अपने जीवन का शेष काल धर्मध्यान मे व्यतीत करने की आज्ञा दीजिए।"

राजा दीर्घ ने सोचा चलो, एक काँटा तो स्वयं ही मार्ग से हटा। उसने कहा—"हाँ, मंत्रिवर ! अब आप विश्राम कीजिए।"

राज्यकार्य से मुक्त होकर, ऐसा प्रदर्शित करते हुए कि वह अब एकान्तवास कर रहा है, धनु मंत्री ने गुप्त रीति से उस लाक्षागृह से बाहर निकलने का एक गुप्त मार्ग बनवा दिया तथा अपने पुत्र वरधनु को सारी स्थिति समझाकर उसे प्रतिपल ब्रह्मदत्त की रक्षा के लिए सन्नद्ध रहने का आदेश दिया।

शुभ मुहुर्त मे ब्रह्मदत्त का विवाह राजा पुष्पचूल की पुत्री पुष्पवती के साथ हो गया। धनु मंत्री दूरदर्शी था। उसने पहले से ही राजा पुष्पचूल को सावधान कर दिया

मुनि ने कथा का समापन करते हुए कहा –

हे चक्री ! तू वही चक्रीवर्ती है और मैं वही श्रेष्ठिपुत्र। हम दोनो को जातिस्मरण ज्ञान हुआ। यह ज्ञान प्राप्त करके मैने पुनः इस संसार की रिद्धि-सिद्धि का त्याग कर दिया है और अपनी आत्मा के वास्तविक कल्याण हेतु मैं मुनि वना हूँ। वन्धु ! तू भी समय रहते अपनी आत्मा का कल्याण साध ले।

इस प्रकार मुनि ने चक्रवर्ती को बहुत समझाया। किन्तु होनहार कुछ और ही थी। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती को सातवें नरक मे जाना था, वह किसी की वात क्यो सुनता ?

× ×

ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती भोग-विलास मे आकण्ठ डुवा रहा। एक वार उस पर नागदेव प्रसन्न हुए और वोले—

"जो चाहे वह वर मुझसे माँग ले।"

चक्रवर्ती ने माँगा—

"मेरे राज्य मे कोई दुखी न हो। मेरे राज्य मे व्यभिचार, चोरी और अपमृत्यु का नाश हो।"

नागदेव ने कहा- 'यह तो परोपकार की वात हुई। तू मुझसे अपने लिए भी तो कुछ माँग।"

तव चक्रवर्ती ने नागदेव से पशु-पक्षियो की भाषा समझ सकने का वरदान माँग लिया। नागदेव ने यह वरदान उसे दिया, किन्तु इस शर्त के साथ कि यदि वह किसी को भी उस वरदान की वात वताएगा तो उसकी तत्काल मृत्यु हो जायगी।

उसका हार्दिक स्वागत किया। दीर्घ को जव अपने गुप्तचरों द्वारा यह संवाद प्राप्त हुआ, तव उसने दूत भेजकर काशी-नरेश से राजकुमार को वापस भेजने की माँग की, किन्तु कटक ने उसकी उपेक्षा करते हुए कड़वा उत्तर दिया। इससे क्रुद्ध होकर दीर्घ ने काशीनरेश पर चढाई कर दी।

राजन् ! इस घटना के वाद रानी चूलनी का हृदय परिवर्तित हो गया। वह पश्चात्ताप की अग्नि मे जलने लगी। उसकी आत्मा ने उसे धिक्कारा विषय के वशीभूत होकर तूने कैसा अनर्थ किया ! तू अपने पुत्र की हत्या कराने तक तैयार हो गई ? अरे, ऐसा नीच कर्म तो संसार का नीच से नीच व्यक्ति भी करने से कतराता है।

पश्चात्ताप की अग्नि में तपकर रानी चूलनी का हृदय शुद्ध हो गया। उसने दीक्षा ग्रहण कर ली और जितना गहन पाप उसने किया था, उतनी ही कठोर तपश्चर्या करके अपने पापकर्मों का क्षय किया और अन्त मे मुक्ति को प्राप्त हुई।

युद्ध में दीर्घ की पराजय और अन्त मे मृत्यु हुई। ब्रह्मदत्त को दैवी चक्र प्राप्त हुआ और उसके प्रहार से दीर्घ अपने प्राण गँवा वैठा। वर्षों के वाद ब्रह्मदत्त अपने राज्य मे लौटा। उसकी प्रजा अपने सच्चे स्वामी को पाकर हर्ष-विभोर हो गई। ब्रह्मदत्त को चौदह रत्न प्राप्त हुए, उसने भरत क्षेत्र के छह खंडो को विजित किया और चक्रवर्ती वना। चौसठ हजार रानियो के साथ उसका विवाह हुआ।

"इन सामने पड़े हुए यव (जौ) के ढेरो में से एक पूला मेरे लिए ला दो।" गैंडे ने उत्तर दिया—

"यह यव तो राजा के अश्वो के खाने के लिए है। मैं यदि उन्हे लेने जाऊँ तो मारा जाऊँ। मैं ऐसा नही कर सकता।"

तव गैंडी ने कहा—'यदि तुम यह यव मेरे लिए नही लाओगे तो मैं मर जाऊँगी।"

गैंडे ने कहा—"तू मर, चाहे जी। तू मर जायगी तो मैं दूसरी गेडी ले आऊँगा। मै कोई इस ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती जैसा मूर्ख नही हूँ कि स्त्री की हठ के कारण मरने के लिए तैयार हो जाऊँ।"

गैंडा-गैंडी की यह बात सुनकर चक्रवर्ती की मति ठिकाने आ गई। वह वापस लौट गया। प्रजा ने चैन की साँस ली।

सात सौ वर्ष व्यतीत हो गए। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती सुखपूर्वक जीवन-यापन करता रहा। न उसके भोग का कोई अन्त था, न विलास का।

एक दिन राजा के एक वृद्ध ब्राह्मण मित्र ने कुटुम्ब-सहित राजा के साथ भोजन करने का आग्रह किया। राजा को अपने वृद्ध मित्र का आग्रह स्वीकार करना पडा। साथ-साथ आनन्दपूर्वक भोजन हुआ। किन्तु उसी समय किसी कारणवश वृद्ध ब्राह्मण राजा से रुष्ट हो गया। उसने अपने मन मे राजा के प्रति वैर की गाँठ बांध ली। अव वह राजा को हानि पहुँचाने का अवसर खोजने लगा।

एक दिन राजा अपनी रानी के साथ विहार कर रहा था । उस समय उसकी दृष्टि एक गिद्ध और गिद्धनी पर पडी । वे आपस मे जो बाते कर रहे थे, वे राजा ने सुनी और उसे हंसी आ गई । गिद्धनी गिद्ध से कह रही थी कि वह उसके लिए इस राजा के अंगविलेपन मे से थोडा-सा विलेपन ला दे । बात हँसी के लायक ही थी, सो राजा को हँसी आ गई ।

रानी को उत्सुकता हुई । उसने राजा से हँसी का कारण पूछा । राजा ने टालना चाहा, किन्तु रानी टली नही । तब राजा ने स्पष्ट कहा—

"यदि तू कारण पूछेगी तो बताने पर तत्काल मेरी मृत्यु हो जायगी, अतः ज़िद न कर, न पूछ ।"

किन्तु तिरियाहठ तो टलता नही । रानी ने कहा—"जीवन और मृत्यु में मैं आपके साथ रहूँगी । हम दोनो साथ ही मरेगे और अगले जन्म मे भी साथ रहेगे । आपको मुझे अपनी हँसी का कारण तो बताना ही होगा ।"

विवश राजा ने स्वय ही नगर से बाहर अपनी चिता तैयार करने का आदेश दिया और वहाँ रानीसहित जा पहुँचा । प्रजा दुःख मे डूबी हुई मौन खडी थी ।

राजा अपनी रानी को हँसी का कारण बताकर मृत्यु का वरण करे, उससे पूर्व ही राजा की कुलदेवी ने उसकी रक्षा के लिए एक गैंडा और गेंडी का रूप धारण किया और राजा के समीप पहुँची । गैंडी गैंडे से कह रही थी—

८

जहाँ आप, वहाँ मैं

भगवान ऋषभदेव के इक्ष्वाकु वंश मे एक समय जितशत्रु नामक राजा हुआ। उसकी रानी का नाम विजया था। राजा के एक छोटा भाई भी था, जिसका नाम सुमित्रविजय था और उसकी पत्नी थी वैजयन्ती।

एक रात्रि को विजया और वैजयन्ती—दोनो को ही स्वप्न आए। स्वप्न चौदह थे। राजा ने दूसरे दिन स्वप्न-शास्त्रियो को बुलाकर जव उन स्वप्नों का अभिप्राय पूछा तव उन पंडितो ने वताया –

"राजन्! शुभ समाचार है। हमारे ज्ञान के अनुसार रानी के गर्भ से उत्पन्न होने वाला बालक तीर्थकर तथा वैजयन्ती का पुत्र चक्रवर्ती होगा।"

राजा और राजवन्धु दोनो हर्षित हो गये। सारे राज्य में प्रसन्नता की लहर दौड गई। समय आने पर माघ सुदी अष्टमी को दोनो पुत्रो का शुभ जन्म हुआ। जन्मोत्सव वडी धूमधाम से मनाया गया और एक का नाम अजितनाथ तथा दूसरे का नाम सगर रखा गया।

विद्याध्ययन की आयु होने पर वालको को पढ़ने भेजा

सोचते-सोचते ब्राह्मण ने एक ग्वाल-बाल को इस बात के लिए राजी कर लिया कि वह दूर खडा होकर अपनी गोफण का निशाना साधकर राजा की आँखे कंकरो की मार से फोड डाले। भोला ग्वाल-बाल उसके बहकावे मे आ गया। उसने अवसर देखकर राजा की आँखें फोड डाली। राजा के सेवकों ने जब उसे पकड लिया, तब उसने सारी बात सच-सच प्रकट कर दी कि किस प्रकार उस ब्राह्मण ने उसे बहकाकर यह कार्य करने के लिए उद्यत किया था। क्रुद्ध राजा ने उस ब्राह्मण को तो मौत के घाट उतरवा ही दिया, किन्तु अब उसने आदेश दिया कि प्रतिदिन ब्राह्मणों की आँखो से भरा हुआ थाल उसके सामने रखा जाय।

राजा के मंत्री दयालु थे। वे प्रतिदिन श्लेष्मान्तक फल से भरा हुआ थाल राजा के सामने रखवा देते। अंधा राजा समझता कि उसके आदेश का पालन हो रहा है और वह प्रसन्न होता। उन फलो को वह ब्राह्मणो की आखें मानकर क्रोधपूर्वक फोड़ डाला करता।

उस प्रकार सोलह वर्ष तक अपने मन से घोर पाप करता हुआ चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त मृत्यु को प्राप्त कर सातवें नरक में गया।

पापकर्म मे जिसका हृदय लिप्त था ऐसे नर्क की कोई रक्षा न कर सका। उसकी रिद्धि-सिद्धि व्यर्थ गई। उसकी सत्ता और शक्ति कपूर की भाँति उड गई।

दो बन्धु थे। एक धर्मचक्री बनकर मुक्त हुआ। दूसरा षट्खण्डो का स्वामी चक्रवर्ती होकर भी अन्त में नरकवासी हुआ। —त्रिषष्ठि शलाका पुरुषचरित्र

गया। भगवान ऋषभदेव के तीर्थ मे वर्तन करते हुए स्थविर मुनिराज के पास दीक्षा अंगीकार कर जितशत्रु राजर्षि ने उग्र तपश्चर्या की और भावना श्रेणी मे उच्च से उच्चतर स्थिति मे पहुँचकर केवल ज्ञान प्राप्त कर अपने अनेक पूर्वजो की भाँति सिद्धि को प्राप्त हुए।

राजा अजितनाथ को राज्य करते हुए त्रेपन लाख पूर्व व्यतीत हो गया। तब उन्होने विचार किया—'आत्मा का उपकार तो इस राज्य से होगा नही। इसका उपकार तो ज्ञान, दर्शन और चारित्र की साधना से ही संभव है।' अतः यह वैराग्य भावना उदय होने पर उन्होने युवराज सगर को बुलाकर कहा—"सगर! अब मेरा मन इस संसार मे नही लगता। मैं दीक्षा ग्रहण कर आत्मसाधना मे लगना चाहता हूँ। इस राज्य को अब तुम सम्हालो।"

भाई की यह बात सुनकर सगर एकदम परेशान हो गया। बोला—

"यह असंभव है। भगवन्! जहाँ आप, वहाँ मैं। आप राजा तो मैं युवराज, और आप गुरु तो मैं शिष्य। मैं यह राज्य नही लेने वाला हूँ।"

तब अजित ने अत्यन्त प्रेमपूर्वक सगर को समझाया—"देखो, मेरे भोगावली कर्म अब क्षीण हो गए है, किन्तु तुम्हारे अभी शेष है। तुम्हे चक्रवर्ती बनना ही है। भला कर्मभोग को कौन टाल सकता है? तुम तो विवेकवान हो, वस्तुस्थिति को समझकर कार्य करो।"

गया । किन्तु अजितनाथ तो जन्म से ही तीन ज्ञान के स्वामी थे, अतः वे स्वयमेव ही सकल कलाओ में पारंगत हो गये । सगर भी बुद्धिमान थे और देखते-देखते ही वे भी शब्दशास्त्र, प्रमाणशास्त्र, वाद्यशास्त्र, चिकित्सा-शास्त्र; धनुर्वेद, युद्ध कला इत्यादि मे निष्णात हो गये। यदि कभी उन्हे कोई कठिनाई आती भी तो वे तत्काल अजितनाथ से समाधान कर लेते।

धीरे-धीरे यौवनकाल भी आया । राजा ने कुमारों से विवाह के लिए कहा । भोगावली कर्म शेष थे और अजितनाथ यह जानते थे, अतः वे मौन रहे । अनेक सुन्दरी राजकन्याओ के साथ दोनों कुमारो का विवाह कर दिया गया ।

काल आनन्दपूर्वक व्यतीत होता चला गया । एक बार राजा जितशत्रु को वैराग्य उदय हुआ । उन्होंने जब अपने पुत्र से राज्य का भार वहन करने के लिए आग्रह किया तब अजितनाथ ने कहा—"आपके शुभ कार्य मे मैं अन्तराय नही डालना चाहता, किन्तु राज्य भार तो काका सुमित्रविजयजी को ही सौपा जाना चाहिए ।

किन्तु सुमित्रविजय ने भी राज्य स्वीकार नही किया । वे स्वय भी वैराग्य की स्थिति में थे । अन्त मे निर्णय यह रहा कि राजा अजितनाथ हो तथा सुमित्रविजय भाव यति (भाव-श्रमण) होकर रहे ।

अजितनाथ राजा हुए तथा सगर युवराज । पिता का दीक्षा-महोत्सव राजा द्वारा बड़ी धूमधाम से मनाया

दृष्टि का विनिमय परस्पर हुआ, दोनो एक-दूसरे की ओर आकृष्ट हुए। सुन्दरियो का समूह आगे बढ गया।

किन्तु एक दासी लौटकर आई और राजा से कहने लगी —

"राजन्! गगनवल्लभ नामक नगर मे सुलोचन नामक एक विद्याधर है। उसके सहस्त्रनयन नामक पुत्र तथा सुकेशी नामक पुत्री है। एक वार निमित्तज्ञानियो ने विद्याधर को वताया था कि सुकेशी चक्रवर्ती राजा की पटरानी बनेगी। अत विद्याधर ने अनेको राजाओ की माँग को ठुकरा दिया।

"एक वार रथनपुर के राजा पूर्णमेघ ने सुकेशी को माँग की। अस्वीकृति मिलने पर उसने पूर्णमेघ पर चढाई करके उसे युद्ध मे मार दिया। किन्तु राजकुमार सहस्त्रनयन किसी प्रकार अपनी वहिन की रक्षा करने मे समर्थ हुआ और उसे लेकर गुप्तरूप से इस वन मे रह रहा है। आपको देखने के बाद मेरी स्वामिनी की स्थिति अव विचित्र हो गई है। उसके हृदय की धड़कन शान्त होती ही नही, प्रत्येक पल वह यही पुकार लगाए हुए है कि तुम्हारे स्वामी उपस्थित हो गए है।"

दासी ने यह वात सगर राजा से कही, उसी समय सहस्त्रनयन भी वहाँ आ पहुँचा। सगर को चक्रवर्ती जानकर उसने अपनी वहिन का परिणय उनके साथ कर दिया। राजा सगर ने उस विवाह के बाद गगनवल्लभ

सगर को स्वीकार करनी पडी अजितनाथ की बात। उसका राज्याभिषेक किया गया और एक संवत्सर तक दान करने के बाद अजित ने दीक्षा ग्रहण कर ली।

राजा सगर, जिन्हें चक्रवर्ती बनना था एक दिन, न्यायपूर्वक अपनी प्रिय प्रजा का पालन कर रहे थे। उस समय उनके शास्त्रागार में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। उसके कारण 'सगरचक्री' के नाम से जाने जाने लगे। उसके बाद छत्र, दण्ड, खड्ग, काकिणी, मणि, गज, अश्व, सेनापति, गाथापति, वार्धकी और स्त्री रत्न भी प्राप्त हुए। उसके बाद शुभ मुहूर्त में सगर छह खण्डों की विजययात्रा पर निकल पड़े। उत्तर भारत मे आपात भिल्लो के अतिरिक्त किसी ने उनका विरोध नही किया और सामान्य विरोध के पश्चात् वे भिल्ल भी उनकी शरण में आ गए। छह खण्डों की विजय के बाद सगरचक्री ने विनीता नामक नगरी के समीप अपनी छावनी डाली।

एक दिन सगर अश्वारूढ होकर भ्रमण कर रहे थे। उस समय उस अश्व को जाने क्या हुआ कि वह अपना भान भूलकर बेतहाशा जंगल की ओर भाग निकला। घनघोर जंगल में पहुँचकर वह एकाएक रुका और वहीं ढेर हो गया। अब सगर अश्वविहीन होकर बिलकुल एकाकी रह गए। एक सरोवर के किनारे पहुँचकर उन्होने जल पिया और कुछ विश्राम किया।

उसी समय एक अत्यन्त सुन्दरी स्त्री अपनी कुछ सखियों-सहित वहाँ आई। राजा और उस सुन्दरी की

सर्वज्ञानी प्रभु ने बताया—

"किसी एक पूर्व भव मे तुम रंभक नामक सन्यासी थे। शीश और आवली नामक तुम्हारे दो शिष्य थे। आवली विनयी और गुरुभक्त था। अतः सहज ही तुम्हारा उसके प्रति विशेष प्रीति भाव था।

एक बार आवली ने एक गाय खरीदनी चाही। किन्तु शीश ने गाय के स्वामी को बहकाकर उसे स्वय खरीद लिया। इस बात पर दोनो मे लड़ाई हो गई और शीश के हाथ से आवली मारा गया। शीश मरकर यह धनवाहन हुआ है और आवली सहस्रनयन। इनके आपसी वैर का यही कारण है तथा सहस्रनयन पर तुम्हे इसी कारण से प्रीतिभाव है।"

भगवान के ये वचन सुमकर भीम नामक एक राक्षस जो उस परिषद मे बैठा था, उठकर धनवाहन के गले लगा और कहने लगा—

"मैं पूर्वभव मे विद्युद्र्ंष्ट नामक राजा था तू (धनवाहन) मेरा रतिवल्लभ नामक पुत्र था। तू मुझे बहुत प्रिय था। अब मैं लंका और पाताल लंका दोनों का स्वामी हूँ। तू मेरे साथ चल और इन दोनो राज्यों का अधिपति बन।"

धनवाहन राक्षसराज के साथ चला गया। परिषद् भगवान के जयघोष के साथ विसर्जित हुई।

सगर चक्रवर्ती के राज्य मे कही कोई अभाव नही था। प्रजा सुखी थी और राजा का कोई शत्रु नही था।

नगर में आकर सहस्रनयन को उसके राजसिंहासन पर पुनः स्थापित कर दिया।

अब राजा सगर अपनी नववधू को लेकर साकेतपुर आए। वहाँ और राजाओं ने उन्हें विधिपूर्वक चक्रवर्ती के पद से सुशोभित किया और समय आनन्दपूर्वक व्यतीत होने लगा।

एक बार साकेतपुर मे अजितनाथ भगवान की परिषद् जुड़ी हुई थी। उस समय पूर्णमेघ को मारकर सहस्रनयन तलवार हाथ मे लेकर वहाँ आया। वह इस पूर्णमेघ के पुत्र धनवाहन के रक्त का प्यासा था। परिषद् मे बैठे हुए धनवाहन पर उसकी दृष्टि भी पड़ी, किन्तु भगवान के समक्ष कैसा वैर और कैसा क्रोध? हिंसक पशु भी भगवान के समीप मे जब शान्त और प्रेममय हो जाते हैं तब मनुष्य पर यह सद्प्रभाव क्यो न होता? अतः सहस्रनयन भी क्षणमात्र में शान्त हो गया तथा आनन्दपूर्वक भगवान की देशना सुनने लगा।

देशना की समाप्ति पर चक्रवर्ती ने भगवान से जिज्ञासा प्रकट की—

"भगवन्! इस सहस्रनयन तथा धनवाहन में यह जो वैरभाव है, इसका मूल करण क्या है, तथा मुझे जो प्रीति का भाव इस सहस्रनयन पर होता है, उसका भी कारण क्या है?"

सगरपुत्र विचारवान थे। उनका उद्देश्य पर्वत की
व्यवस्था करना ही था। वे नागलोक के निवासियों को
कोई कष्ट नही देना चाहते थे। अत उन्होने अपनी भूल
के लिये क्षमायाचना की और खाई को और अधिक
गहरी करना रोक दिया।

अब उन्होने विचार किया -- बिना जल से भरी सूखी
खाई का कोई अर्थ नही। उसमे जल तो भरा ही जाना
चाहिये। किन्तु इतना अधिक जल आये कहाँ से ? गंगा
के अतिरिक्त किसी नदी मे से इतना जल मिलना संभव
नही। अतः उन लोगो ने मिलकर गंगा नदी से एक नहर
निकालकर खाई को भर दिया।

किन्तु पतितपावनी गंगा से जल इतनी अधिक मात्रा
मे आया कि नागलोक में जल-ही-जल भर गया और
वहाँ त्राहि-त्राहि मच गई। इससे नागराज के क्रोध का
पारा चढ गया। कुपित होकर वे बाहर निकले और
अपने दृष्टि विप से उन्होने क्षण मात्र मे उन सभी साठ
हजार राजकुमारो को भस्म कर दिया।

सगरपुत्रो की छावनी मे हाहाकार मच गया। मन्त्रि-
गण अपना माथा पकडकर रह गए - हाय ! यह क्या
हुआ ? अब कौन-सा मुँह लेकर वे सगर चक्रवर्ती के
सामने जायँगे ? जिस पिता के साठ हजार पुत्र एक साथ
मृत्यु के मुख मे चले जायँ वह अपने हृदय को कैसे धैर्य
देगा ? अब क्या हो ?

समय अपनी गति से सुखपूर्वक व्यतीत हो रहा था। काल-क्रमानुसार राजा के साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए और धीरे-धीरे वे यौवन में प्रवेश कर गये। चूंकि कोई प्रदेश चक्रवर्ती द्वारा विजित किये जाने को शेष नहीं था, अतः उसके सभी पुत्र अपनी इच्छानुसार घूमते-फिरते और आनन्द मनाते थे।

एक बार सगर-पुत्रों का यह सागर लहराता हुआ अष्टापद के समीप आ पहुँचा। पर्वत-रमणीय था। उसके उत्तुङ्ग शिखर आकाश से बातें करते थे।

आनन्दित होकर वे साठ हजार राजकुमार पर्वत पर चढ़े और वहाँ के रमणीय दृश्य को देखकर आनन्दविभोर हो पडे।

वे उस पर्वत के चारों ओर एक गहरी और विशाल खाई खोदने लगे। खाई गहरी होती चली गई और जब वह एक हजार योजन गहरी हो गई तो नागलोक में तहलका मच गया। इस उत्पात से चिन्तित एवं क्रुद्ध होकर नागलोक का ज्वलनप्रभ नामक देव बाहर आया और बोला—

"हे अभिमानी सगर पुत्रो! तुम यह क्या अनर्थ कर रहे हो? क्या तुम अपने पिता की असीम शक्ति के मद में चूर हो रहे हो? नागलोक में नीचे मंदिर खंडित हो गये है और तुम्हे कुछ भान ही नहीं? शक्ति प्राप्त करने पर तो निर्बलों की रक्षा की जाना चाहिये, न कि उन्हें पीड़ा पहुँचानी चाहिये।"

ब्राह्मणी फूट-फूट कर रो रही है। मेरे पुत्र को रात्रि मे सर्प ने डस लिया था और उसकी तत्काल मृत्यु हो गई थी।

"सम्राट्! मेरा सर्वस्व स्वाहा हो गया। मेरा इक-लौता बेटा मर गया। हाय, अब हमारी रक्षा कौन करेगा? हमारे शोक को देखकर हमारी कुलदेवी ने प्रकट होकर कहा है—'विप्र! जाओ, किसी ऐसे घर से मगलाग्नि लाओ जिसमे कभी किसी की मृत्यु न हुई हो।'

"राजन्! घर-घर भटक रहा हूँ, दर-दर की ठोकर खा रहा हूँ। कही वह मंगलाग्नि मिलती नही। किन्तु आप चक्रवर्ती है, सर्वसमर्थ है। आप कही से वह अग्नि मुझे दीजिए।"

सगर चक्रवर्ती उस ब्राह्मण का यह कथन सुनकर स्तम्भित रह गए। जीवन मे संभवत: प्रथम बार आज वे स्वयं को विवश, असहाय और असमर्थ अनुभव कर रहे थे। शोक उनके हृदय में घिर आया था। किन्तु वे ज्ञानी थे, बोले—

"हे विप्रवर! आप तो विवेकी है, तनिक विचार कीजिए कि इस असार संसार मे कौन ऐसा है जो अमर हो। कोई ऐसा घर नही जहाँ से काल ने अपना ग्रास न लिया हो। मैं चक्रवर्ती हूँ अवश्य, किन्तु मेरे कुल में भी ऋषभदेव, भरत, आदित्ययशा, महायशा, अतिवल, वल-भद्र, वलवीर्य, कार्तिवीर्य इत्यादि प्रतापी महापुरुषों को कराल काल का ग्रास बनना पडा है। विप्रवर! आप तो

ऐसी विषम परिस्थिति में जाने कहाँ से एक ब्राह्मण वहाँ आ गया। सब कुछ देख-सुन कर उसने मंत्रियों से कहा—"आप लोग शोक न करें। धीरज धरें। सगर चक्रवर्ती को मैं समझाऊँगा।"

डूबते हुओ को तिनके का सहारा मिला। राजकोप के भय से मृत्यु के मुख में स्वयं ही प्रवेश करने के लिए प्रस्तुत हो रहे वे अभागे एक आशा पर अटक गए।

ब्राह्मण राजा की राजधानी में जा पहुँचा। उस समय वह शोक से व्याकुल बना चीख-चीख कर पुकार रहा था—"हाय! कोई मेरी रक्षा करो। मैं लुट गया, मेरा सर्वस्व लुट गया। अरे, कोई तो मेरी रक्षा करो।"

वेदाभ्यासी निर्धन ब्राह्मण की यह आर्त पुकार सर्व समर्थ चक्रवर्ती के कानों तक भी पहुँची। उनका हृदय करुणा से भर आया। ब्राह्मण को बुलाकर उन्होंने पूछा—

"विप्रवर! आपको क्या कष्ट है? आप इतने शोका तुर क्यों है? मेरे राज्य मे ऐसा कौन-सा दुस्साहसी पातकी है जिसने आपको कष्ट दिया है?"

आठ-आठ आँसू ढुलकाते विप्र ने सिसकियों से भरे, कंठ से कहा—

"राजन्! अश्वभद्र ग्राम का निवासी मैं एक निर्धन अग्निहोत्री ब्राह्मण हूँ। मेरा एक ही लाडला बेटा था। उसकी माता को उसे सौपकर मैं विद्याध्ययन हेतु गया था। लौटकर देखता हूँ कि बालक का शव गोद में लिए

आकाश जैसे सहसा फट पड़ा हो, अथवा धरती पैरो के तले से एकाएक खिसक गई हो, ऐसा सगर चक्रवर्ती को अनुभव हुआ। एकाएक वे इन शब्दों के अर्थ को ही जैसे समझ नही पाए और उन कठोर शब्दो का अर्थ जब उनके हृदय तक उतरा, तव उन्हे लगा कि जैसे वे मूर्च्छित हो जॉयगे।

सगर चक्रवर्ती को जव ज्ञान हुआ तव वहॉ वे एकाकी थे। विप्र विलीन हो चुका था। उन्होने जान लिया कि वह ब्राह्मण ब्राह्मण नही, विप्र वेशधारी इन्द्र था। साठ हजार पुत्रों की मृत्यु का समाचार इस कौशल से देने आया था कि मैं शोक न करूँ।

सगर चक्रवर्ती ने अपने हृदय पर पत्थर रख लिया। सामान्य लोगो की भॉति वे शोक मे नही डूब गये। किन्तु उनके हृदय मे वैराग्य की तीव्र हिलोर उठ आई। अपने पौत्र भगीरथ को बुलाकर उन्होने धीर-गंभीर वाणी मे कहा--

"भगीरथ ! आयुष्मान् ! काल की गति विचित्र है। प्राणी को यह अपना ग्रास बना ले उससे पूर्व ही आत्म-कल्याण की साधना करनी चाहिए। यह राज्य अव तुम सम्हालो, मैं दीक्षित होना चाहता हूँ।"

उसी अवसर पर भगवान् अजितनाथ विचरण करते हुए वहॉ पधारे। भगवान् के समवसरण मे जाकर, देशना

पंडित है, शोक का त्याग कीजिए। इस जगत मे जो जन्म लेता है, वह मृत्यु को भी अवश्य प्राप्त होता है।"

चक्रवर्ती का कथन सुनकर ब्राह्मण ने कहा—

"राजन्! इन बातों को मैं भी जानता हूँ, किन्तु जिस पर वीतती है, वही जानता है। जिसके पैर मे विवाई फटती है, वही पीडा का अनुभव करता है। शास्त्रो के वचन और विवेक की वाते सव धरी रह जाती है, जव मनुष्य को साक्षात् दुःख भोगना पडता है। मैं जानता हूं कि मृत्यु अवश्यम्भावी है। मेरे एक ही पुत्र था, तो एक ही पुत्र की मृत्यु हुई। किन्तु जिसके अधिक पुत्र होंगे उसके अधिक पुत्रो की मृत्यु होगी। आपकी बात को शिरोधार्य करके मैं अपने शोक का त्याग करता हूँ। किन्तु राजन्! मान लीजिए कि कोई आपको आपके सभी पुत्रो की मृत्यु का दुःखद समाचार यदि दे, तो क्या आप भी शोक नही करेंगे?"

विप्र की यह सुनने में भी कटु लगने वाली वात सुनकर क्षण-भर के लिए सगर चक्रवर्ती साँस रोककर बैठे रह गये, किन्तु फिर बोले—

"विप्रवर! पुद्गल मे से पुद्गल उत्पन्न होता है और उसी में विलीन भी हो जाता है। किसी की मृत्यु से शोक करना निरर्थक है।"

"तब धैर्य धारण करके सुनिये राजन्! कि आपके साठ हजार पुत्र नागराज के कोपभाजन वनकर उनके दृष्टि विष से भस्म होकर मृत्यु को प्राप्त हुए है।"

९

विधि का खेल

कनकपुर मे कनकरथ का राज्य था। उसकी अग्रमहिषी का नाम कनकश्री था। रत्नसार नगर श्रेष्ठी था। सेठाणी का नाम रत्नचूला था और पुत्र का नाम था, धनद। इसी शहर मे सिंहल नामक एक जुआरी था, जो नगर की अधिष्ठात्री देवी के मन्दिर में प्रतिदिन जुआ खेलता था। जुए मे उसने सब कुछ गँवा दिया। उसके पास न खाने को अन्न रहा और न रहने को आवास ही। भूखा-प्यासा देवी के मन्दिर मे सो रहा था। उसे ध्यान आया कि देवी से ही धन की याचना क्यो न कर लू। उसने देवी से कहा—मैं प्रतिदिन तेरे यहाँ आता हूँ, घण्टो तक तेरी सेवा में बैठता हूँ, किन्तु तू मुझे कभी भी कुछ नही देती है, यदि आज तूने मुझे कुछ भी नही दिया तो मैं पत्थर से तेरे टुकड़े-टुकड़े कर दूगा।

देवी ने भयभीत होकर एक पन्ना उसके हाथ मे थमा दिया, जिसमे एक गाथा लिखी हुई थी।

पन्ने को देखकर वह और भी अधिक क्रुद्ध हो गया।

सुनकर सगर चक्रवर्ती ने भगवान के समीप दीक्षा ग्रहण कर ली।

शीघ्र ही सगर मुनि ने उत्कृष्ट तप द्वारा अपने समस्त घाति कर्मों का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया और अन्त में शाश्वत सिद्धिपद को प्राप्त हुए—जहां न शोक है, न हर्ष।

—लघु त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र

श्रेष्ठी रत्नसार को भी अपने पुत्र की मूर्खता पर क्रोध आ गया, उसने धनद को फटकारते हुए कहा—मेरे घर से निकल जा। वणिक् पुत्र होकर के भी तूने अपनी बुद्धि का दिवाला निकाल दिया है। एक गाथा कही एक हजार मुद्रा मे खरीदी जाती है ?

धनद पिता की बात सुनकर सोचने लगा कि इस प्रकार अपमान सहकर घर मे रहना उचित नही है। सन्ध्या के समय वह घर को छोड़कर चल दिया। नगर के बाहर उद्यान मे पहुँचा और वृक्ष के नीचे सूखे पत्तो का बिछौना बिछाकर सो गया। एक शिकारी जो शिकार के लिए जंगल में जा रहा था धनद के करवट बदलने से सूखे पत्तों की आवाज उसके कानो मे गिरी। उसने हिरन समझ कर बाण छोड दिया। बाण से धनद का पैर बीध गया। दर्द से वह कराहने लगा। शिकारी पास मे आया, उसे अपनी भूल पर पश्चात्ताप हुआ। उसने धनद के पैर मे से बाण निकाल दिया। रक्त अधिक मात्रा में जाने से धनद मूर्च्छित हो गया। शिकारी वहाँ से आगे चल दिया। प्रातः भारण्ड पक्षी ने धनद को मरा हुआ जानकर उठाया और लेकर अज्ञात द्वीप की ओर बढ गया। भारण्ड उसे खाना चाहता था, पर धनद को कुछ होश आ गया था, अतः वह उसे वही छोड़कर चला गया।

धनद ने उस भयानक जंगल को देखा, जहाँ वनचर पशुओ की आवाजे आरही थी, वह चिन्तन करने लगा अरे मैं अपने नगर के उपवन से यहाँ कैसे आ गया।

अरे ! तुझे देना ही है तो सम्पत्ति दे, इस टुकडे से मुझे क्या लाभ होगा ।

देवी ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा—तू इस पन्ने को लेकर मुख्य चौराहे पर जा । वहाँ पर कोई भी भला आदमी एक हजार मुद्रा देकर यह गाथा खरीद लेगा । सिंहल गाथा को लेकर चौराहे पर आया । उधर धनद भी वहाँ पर आ गया । उसने पत्र लेकर पढा, जिसमें यह गाथा लिखी हुई थी—

जं च्चिय विहिणा लिहियं,
तं चिय परिणमइ सयललोयस्स ।
इह जाणिउण धीरा,
विहुरेवि न कायरा हुंति ॥

अर्थात् विधि के लेख के अनुसार ही संसार मे सब कुछ होता है, यह जानकर धीर पुरुष कभी भी कायर नहीं होते ।

धनद को वह गाथा बहुत ही पसन्द आई । उसने हजार मुद्रा देकर वह गाथा खरीद ली । किन्तु उसके य जो उसके साथी थे उन्हें वह बात पसन्द नही आई । होने इस बात की शिकायत श्रेष्ठी रत्नसार से की ।क आपके पुत्र इस प्रकार व्यापार करते है कि कुछ ही दिनो में आपके घर में धन के अंबार लग जायेगे । देखिए एक हजार मुद्रा में एक गाथा खरीदना क्या कम बुद्धि- मानी है ।

सरलमना धनद ने कहा—मै वनचर हूँ, यही पर रहता हूँ, यह वन मेरा है। और उसने कुआँ बता दिया।

कुएँ के पास अपार स्वर्ण राशि व रत्न-समूह को देख कर सुदत्त सार्थवाह का मन ललचा गया। उसने पूछा यह धन किसका है। धनद ने बतया यह मेरा है। यदि तुम मुझे इच्छित स्थान पर पहुँचा दोगे तो इसका चौथा हिस्सा तुम्हे भेंट कर दूगा।

सुदत्त सार्थवाह के मन मे पाप था उसने अपने विश्वस्त अनुचरो को संकेत कर दिया कि इसे कुएं मे डाल दो।

धन के लोभ मे मानव परोपकारी के साथ मे भी बुराई करने से नही चूकता। सार्थवाह के अनुचर धनद को कुएँ पर ले गये और बोले हमे कुएँ से पानी खीचना नही आता है, हम जिस द्वीप से आए है वहाँ पर कुएँ नही है, यदि तुम एक वार निकाल कर हमे बता सको तो तुम्हारा महान उपकार होगा।

सरलमना धनद ने पानी निकालना प्रारम्भ किया। वह ज्यो ही घड़े को लेने के लिए झुका, त्यो ही सार्थवाह के अनुचरो ने उसे कुएँ मे धक्का दे दिया। धनद कुएँ मे गिर पड़ा। पर भाग्ययोग से वह मेखला पर ही अटक गया। वहाँ पर वृक्ष के बहुत सारे पत्ते। जमा थे अतः धनद को चोट नही लगी। धनद गाथा का स्मरण कर वहाँ पर बैठ गया। वह कुएं मे इधर-उधर देख रहा था कि उसे एक द्वार दिखाई दिया। उसने द्वार को खोला तो अन्दर सीढिया मिली। उनके सहारे वह नीचे उतरा।

यहाँ कोई भी मनुष्य दिखाई नही दे रहा है। उसे भूख और प्यास सता रही थी वह खाने के लिए इधर-उधर तलाश करने लगा । इधर-उधर भटकते हुए वह एक शून्य नगर में पहुँच गया। सारे मकान खाली पडे थे। नगर मे एक कुआँ था उसमें से उसने पानी पीकर प्यास बुझाई और बगीचे मे से फल खाकर अपनी भूख शान्त की। रात्रि मे शून्य नगर मे रहना उपयुक्त न समझकर वह जंगल मे चला गया। सर्दी बहुत थी, अतः उसने शीतनिवारणार्थ लकडियाँ जलाई । रात व्यतीत होने पर उसने प्रातः देखा कि जहाँ पर आग लगाई गई थी, वह सारी भूमि सुवर्ण की तरह चमक रही है। धनद को विश्वास हो गया कि यह स्वर्ण द्वीप है यहा की मिट्टी अग्नि का संयोग पाते ही स्वर्णमय हो जाती है अतः धनद ने अपने नाम की स्वर्ण ईंटों का ढेर लगा दिया।

एक दिन वह जगल मे इधर-उधर घूम रहा था कि उसे विशाल रत्नो का समूह भी मिल गया। वह उसे ले आया। फल-फूल खाता और आनन्द से वहा पर रहने लगा।

एक दिन सुदत्त नामक सार्थवाह जहाज से अन्य द्वीप जा रहा था, किन्तु पानी-लकड़िया समाप्त हो जाने से उसी द्वीप में पहुँच कर उसने जहाज को रोका। वह अपने अनुचरों के साथ पानी की अन्वेषणा करता हुआ वही पहुँच गया, जहा धनद रहता था। उसने धनद से पूछा—तुम कौन हो! यहा कही पानी हो तो हमें बताओ!

कहाँ से आये है ? यहाँ आकर आपने अपने प्राणों को क्यो संशय मे डाला है ? कृपा कर शीघ्र ही यहां से चले जाइये, यही आपके लिए श्रेयष्कर है ।

धनद ने उत्तर देते हुए कहा—तुम्हे घबराने की आवश्यकता नही है । मुझे कोई भी संकट मे डालने वाला नही है । मैं दूसरो का संकट नष्ट करने वाला हूँ । तुम मुझे अपनी कहानी सुनाओ, और साथ ही यह बताओ कि यह नगर जनशून्य कैसे हुआ है ?

कन्या धनद के तेजस्वी व्यक्तित्व से अत्यधिक प्रभावित हुई । उसने कहा—प्रस्तुत नगर का नाम तिलकपुर है । यहाँ के राजा महेन्द्र मेरे पिता थे । एक बार शत्रु राजा ने इस नगर पर आक्रमण किया । मेरे पिता के पास सैनिक शक्ति बहुत ही कम थी, अतः वे हार गये । वे एक दिन चिन्तामग्न बैठे थे । उनका एक व्यंतर देव मित्र था । वह उनसे मिलने के लिये आया । पिता श्री ने देव से कहा कि मुझे सहयोग दो जिससे मैं शत्रु राजा को पराजित कर पुनः विजय वैजयन्ती फहरा सकूँ ।

देव ने कहा—मैं शत्रु राजा को पराजित नही कर सकता, क्योंकि उसके पास भी मेरे से अधिक शक्ति-सम्पन्न देव सेनाएँ है । अतः मेरा आपसे निवेदन है कि शत्रुओं से यदि हमेशा के लिए समस्या का समाधान करना है तो आप यहां से राजधानी परिवर्तन कर लीजिए । यदि आप चाहते है तो मैं नया नगर बसा देता हूँ ।

कुछ दूर आगे बढने पर चक्रेश्वरदेवी का सुन्दर आवास दिखाई दिया। उसकी भक्ति से वह प्रसन्न हो गई। उसने कहा—धनद ! तू इस मार्ग से ज्यो-ज्यो आगे जायगा त्यो-त्यों समृद्धि तुझे प्राप्त होगी, तथापि मैं तो तेरी भक्ति पर प्रसन्न हूँ, अतः तेरे न मांगने पर भी मैं तुझे पांच अनमोल रत्न देती हूँ जिससे लक्ष्मी और सौभाग्य की अभिवृद्धि होगी, रोग नष्ट होगे, विष का निवारण हो जायेगा। धनद रत्नों को लेकर आगे बढा, आगे उसे व्रण संरोहणी महौषधी दिखाई दी, उसने पॉचों रत्नों को अपनी जंघा चीर कर रख दिया और ओषधि से घाव को भर दिया। वह वहाँ से भी आगे बढा और पातालपुर में पहुँच गया। वहॉ पर सारी दुकाने सजाई हुई थी। धन के अम्बार लगे हुए थे। खाद्य सामग्री भी विपुल मात्रा में थी, किन्तु नगर मे कही पर भी मनुष्य दिखाई नही दे रहा था। उसके मन में अनेक जिज्ञासाएँ जाग्रत हो रही थी। वह नगर में घूमता हुआ आगे पहुँचा। एक सात मंजिल का बहुत ही सुन्दर भवन दिखाई दिया। उसने उसमे प्रवेश किया, किन्तु वहॉ पर भी कोई भी व्यक्ति उसे दिखाई नहीं दिया। जब वह सातवी मंजिल पर पहुँचा, तब उसे एक नवकुसुमित फूलों की मालाओ से लदी हुई एक सौन्दर्य-मूर्ति नारी बैठी हुई दिखाई दी। उसके विलक्षण सौन्दर्य और उभरते हुए यौवन को देखकर वह चकित-सा रह गया। वह उस महिला का परिचय पूछना चाहता ही था कि उस महिला ने ही कहा—पूज्यवर ! आप कौन हैं?

कन्या उसकी वीरता भरी वातें सुनकर और भी अधिक आकृष्ट हुई। उसने कहा, यदि आपमें सामर्थ्य है तो मैं आपको एक उपाय वताती हूँ। यहाँ पर आते ही वह राक्षस सर्वप्रथम विद्या की अर्चना करेगा। उस समय वह पूर्ण मौन रह कर एकाग्र चित्त से ध्यान करेगा। आप उस समय मेरे पिता श्री की यह जो तलवार पडी है, उससे उसे मार सकते है।

धनद और कन्या ये दोनों परस्पर वार्तालाप कर ही रहे थे कि राक्षस एक मुर्दे को लेकर आ पहुँचा। धनद को देखकर वह नाच उठा। अरे! आज तो सहज रूप मे ही भक्ष्य आ गया है। वह मुर्दे को एक ओर रखकर ध्यानस्थ हुआ। धनद इसी अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। अरे दुष्ट! तूने आज दिन तक हजारो मानवो को खत्म कर दिया है। किसी ने भी तेरा प्रतिकार नही किया। धनद ने उछलकर एक ही तलवार के प्रहार से राक्षस को धराशायी कर दिया। तिलकसुन्दरी के आग्रह पर धनद ने उसके साथ पाणिग्रहण किया। कुछ दिन वहाँ रहने के पश्चात् तिलकसुन्दरी के साथ वहुमूल्य स्वर्ण, रत्न वस्त्राभूषण लेकर धनद ने प्रस्थान किया और कुएं की मेखला पर प्रतीक्षा करने लगा। उसी समय देवदत्त सार्थवाह का जहाज द्वीप पर आकर रुका। वह पानी की अन्वेषणा करता हुआ कुएँ पर आया। कुएँ मे ज्यो ही रस्सी डाली, त्यो ही धनद ने रस्सी को पकड़ लिया और वाहर निकालने का आग्रह किया। सार्थवाह ने छोटी-सी

पिता श्री को देव की बात पसन्द आई और देव ने प्रस्तुत नगर बसा दिया। इस नगर में प्रवेश और निर्गमन केवल कुएं के द्वार में से ही हो सकता था। कुए की सुरक्षा के लिये बाहर दूसरे नगर का निर्माण किया गया। समुद्र का किनारा होने से जहाजो के द्वारा माल का आयात-निर्यात भी होता था।

धनद ने जिज्ञासा व्यक्त की कि फिर यह नगर जन-शून्य कैसे हो गया।

कन्या ने आँखो से आँसू बरसाते हुए कहा एक दुष्ट राक्षस यहाँ पर आ गया और उसने कुए की सम्पूर्ण सीढ़ियाँ तोड़ दी और धीरे-धीरे यहाँ के सभी लोगो को वह खा गया। बाहर के नगर के लोगों पर भी उसने आक्रमण किया, पर वे आजाद थे अतः नगर को छोडकर भाग गये। दोनों ही नगर राक्षस के कारण शून्य हो गये है। पर राक्षस मेरे भव्य रूप पर मुग्ध हो गया और उसने मुझे सात दिन पूर्व कहा था कि मैं तेरे साथ सातवें दिन विवाह करूंगा। मैं उस दुष्ट के चंगुल से मुक्त होना चाहती हूँ, पर कोई उपाय भी तो नहीं है। अब आप कृपाकर यहाँ से चले जाइये, वह दुष्ट आता ही होगा। यदि उस दुष्ट की दृष्टि आप पर पड़ गई तो फिर आपकी सुरक्षा सम्भव नही है।

धनद ने साहस के साथ कहा—देवी! घबराओ नहीं, वह दुष्ट मेरा बाल भी बांका नही कर सकता। मुझे देखते ही उसके प्राण संकट में पड़ जायेंगे।

देखा तो उसे पाने के लिए आतुर हो उठा। एक दिन उसने धीरे से धनद को समुद्र मे धक्का देकर गिरा दिया और वाद मे आँखो से आँसू वहाता हुआ ऐसा नाटक करने लगा कि उसे अत्यन्त दु:ख है कि वह कैसे गिर गया।

कुछ दिनो के पश्चात् उसने तिलकसुन्दरी से कहा—धनद तो अव पुनः लौटकर आने से रहा। अतः यही अच्छा है कि तुम मेरी सहधर्मिणी वन जाओ। तुम्हारी जैसी सुन्दरी को पाकर मैं धन्य हो जाऊँगा।

तिलकसुन्दरी मन मे समझ गई कि पति को समुद्र मे धकेलने वाला यही है, पर मैं इस समय इन्कार करती हूँ तो यह मेरे साथ बलात्कार आदि कुछ भी कर सकता है। अतः उसने मुस्कराते हुए कहा - आप इतनी शीघ्रता क्यो कर रहे है ? मै आपको छोडकर कहाँ जाने वाली हूँ ? आप अपने नगर मे चलिए, वहाँ मैं राजा से अनुमति प्राप्त करके आपकी सहधर्मिणी वन जाऊँगी, जिसस आप लोकापवाद से भी वच जायेगे।

सार्थवाह को तिलकसुन्दरी का प्रस्ताव वहुत ही पसन्द आया और उसे यह आत्मविश्वास हो गया कि नगर मे जाने के पश्चात् इसके साथ मेरा पाणिग्रहण हो जायेगा।

धनद समुद्र मे गिरा। एक काष्ठफलक उसके हाथ लग गया। उसके सहारे वह तैरता रहा और एक नगर के किनारे पहुँचा। पर एक मत्स्य ने उसे वहाँ निगल

मंचिका कुएं में उतारी। धनद उस पर बैठकर बाहर आया। वस्त्राभूषणों से सुसज्जित धनद को देखकर सार्थवाह चकित हो गया। फिर धनद ने अपने बहुमूल्य सामान को और तिलकसुन्दरी को बाहर निकाला। अप्सरातुल्य कन्या और विराट् वैभव को देखकर सार्थवाह के आश्चर्य का पार ही न रहा। सार्थवाह की जिज्ञासा पर धनद ने कहा—मैं बहुत बडा व्यापारी था, अपनी पत्नी के साथ जहाज मे बैठकर व्यापारार्थ जा रहा था कि तूफान से जहाज टूट गया और प्यास से छटपटाते हुए हम पति-पत्नी यहाँ पर आये और पत्नी का पैर फिसल जाने से वह कुएं मे गिर पडी। उस पर मेरा अत्यधिक स्नेह होने से मैं भी गिर पडा, भाग्य से हम मेखला पर ही रुक गये। जल देव हमारे प्रेम को देखकर खुश हो गया और उसने यह सारी सामग्री हमें प्रदान की है और उसी ने हमे संकेत किया है कि जहाज आ रहा है, उसी मे बैठकर घर चले जाना।

सार्थवाह ने कहा—बहुत ही अच्छा है, आप अपना सामान जहाज में रख दीजिए और अपने देश चलिए।

धनद ने कहा—आपने मुझ पर अपार उपकार किया है। घर पहुँचने पर मैं अपनी सम्पत्ति का छठा हिस्सा आपको समर्पित करूँगा।

धनद अपनी पत्नी तिलकसुन्दरी और धन-सम्पत्ति को लेकर जहाज मे बैठ गया। सार्थवाह देवदत्त ने जब उसके विराट् वैभव को और तिलकसुन्दरी के दिव्य रूप को

सार्थवाह अपने स्थान पर आया। पर उसके मन मे शंकाएँ उद्बुद्ध हो रही थी। उसने अपने गुप्तचरो से पता लगाया कि यह मत्स्योदर कौन है। सही पता लगने पर उसे यह निश्चय हो गया कि यह वही है। अपने पाप का घडा न फूट जाये, इसलिए उसने षड्यन्त्र प्रारम्भ किया। नगर मे गीतरति नामक एक मातंग था जो संगीत कला मे निष्णात था। सार्थवाह ने उसे अपने पास बुलाया और सोने की चार ईंटे देते हुए कहा कि तुम मेरा एक काम कर दो और वह काम यह है कि राजा को यह बता दो कि मत्स्योदर मेरा भाई है। गीतरति ने कहा—यह बहुत ही छोटा कार्य है। मैं कल ही यह कर दूगा।

दूसरे दिन राजसभा मे गीत-रति पहुँचा। उसकी सुरीली स्वर-लहरियो पर राजा मुग्ध हो गया। राजा ने मत्स्योदर को आदेश दिया कि गीतरति को पान दो। मत्स्योदर पान को लेकर ज्यो ही गीतरति के पास पहुँचा कि गीतरति उसके गले में हाथ डालकर कहने लगा—बन्धुवर! आप इतने दिनो तक कहाँ थे? मै आपकी अपलक प्रतीक्षा करता रहा, आज मेरे धन्य भाग्य है कि आपके दर्शन हो गये।

सारी सभा चकित होकर यह नाटक देख रही थी। उन्हे यह पहेली समझ मे नही आ रही थी। राजा ने मत्स्योदर से पूछा—क्या बात है।

मस्योदर ने एक क्षण चिन्तन कर कहा—राजन्!

लिया, वह समुद्र की गहराई में जाना चाहता था, पर धीवरों ने उसे जाल में पकड़ लिया। जब उन्होंने मत्स्य को चीरा, तब एक मूर्च्छित व्यक्ति को देखकर वे चकित हो गये। शीतल उपचार करने पर वह सचेत हुआ। धीवर उसे लेकर राजा के पास आया, राजा ने धनद से पूछा--धनद चतुर था। असमय मे वह रहस्य का उद्घाटन नही करना चाहता था। अतः उसने कहा—राजन्! मैं वणिक पुत्र हूँ, समुद्रयात्रा कर रहा था। तूफान ने जहाज टूट गया और फलक के सहारे तैरता हुआ तट पर पहुँचा, मैं नगर की ओर देख रहा था कि मत्स्य ने मुझे निगल लिया।

धनद के वाक्चातुर्य से राजा बहुत ही प्रभावित हुआ। उसने उसका नाम मत्स्योदर रख दिया और उसे राजसभा मे पान देने का कार्य सौप दिया।

सुदत्त सार्थवाह भी इधर-उधर घूमता हुआ जहाज को लेकर वहाँ पहुँच गया। वह बहुमूल्य उपहार लेकर राजसभा पहुँचा। राजा ने सार्थवाह का सम्मान किया और उसका शुल्क माफ कर दिया। राजा ने मत्स्योदर को आदेश दिया कि सार्थवाह को वह पान दे। सार्थवाह ने जब मत्स्योदर को देखा तो वह पहचान गया कि यह तो वही है जिसको मैंने कुएँ मे डाला था और इसकी विराट सम्पत्ति को लेकर मैं चला आया, पर यह यहाँ पर कैसे आ सकता है, पर संभव है कि उसी की आकृति से मिलता-जुलता यह कोई दूसरा व्यक्ति हो।

राजा ने मत्स्योदर की ओर दृष्टिपात किया और पूछा—बताओ क्या सत्य है।

मत्स्योदर— राजन्! यह अब जो कह रहा है, वह सत्य है। राजन्! यह गीतरति अपने आपमे कुटिल नही है। सुदत्त सार्थवाह ने मेरे धन को हड़पने के लिए ही यह षड्यन्त्र रचाया है। उसने मेरी सोलह सौ स्वर्ण ईंटे ली है जिस पर मेरा नाम 'धनद' उट्टंकित है और पन्द्रह हजार उत्कृष्ट रत्न भी उसने लिये है। उसने कपट से मुझे कुएँ मे डाल दिया और मेरी सम्पूर्ण सम्पत्ति पर अपना अधिकार जमा बैठा। उसने सोचा कि कही मेरा पाप प्रकट न हो जाये, अत: उसने यह कार्य किया है।

राजा ने गीतरति के घर मे ईंटे मंगाकर देखी, उन पर 'धनद' नाम लिखा था। राजा को विश्वास हो गया। राजा ने सार्थवाह के यहाँ से सारी सम्पत्ति मँगाकर मत्स्योदर को दी और मातंग गीतिरति को व सार्थवाह को देश से निष्कापित कर दिया।

मत्स्योदर ने राजा को एकान्त मे सारी अपनी आत्म-कथा बता दी और कहा—देखिए अभी बहुत से गुप्त रहस्य प्रकट होगे।

कुछ दिनो के पश्चात् देवदत्त सार्थवाह भी अपने जहाज लेकर वहाँ पहुँचा। उसने बहुमूल्य उपहार लेकर तिलकसुन्दरी के साथ राजसभा मे प्रवेश किया। मत्स्योदर ने दूर से ही उन्हे पहचान लिया। मत्स्योदर ने राजा को संकेत कर दिया।

यह सत्य कह रहा है। मेरे पिता संगीत कला में निष्णात थे। जाति से हरिजन होने पर उनके पास अपार वैभव था। हमारी दो माताएँ थी, एक का मैं था और दूसरे का यह था। मेरी माता पर पिता का प्रेम नही था अत मेरे पर भी उनका स्वाभाविक रूप से प्रेम कम था। इसकी माता पिताजी को बहुत ही प्रिय थी, इस कारण यह भी पिताजी का बहुत ही प्यारा था। एक बार पिता ने मेरी जंघा चीर कर पांच रत्न डाल दिये और कहा किसी विकट संकट की घडी मे यह काम आयेगे। यह बहुत अधिक प्रिय होने से इसके सम्पूर्ण शरीर मे रत्न जड दिये। अपनी बात को प्रामाणिक करने की दृष्टि से मत्स्योदर ने अपनी जंघा को चीर कर पॉच रत्न निकाल कर बताये। राजा देखकर चकित हो गया। राजा ने अपने सैनिक को आदेश देते हुए कहा गीतिरति के शरीर को चीरकर रत्नो का खजाना निकाल दो।

गीतिरति संकट मे फँस गया। उसने राजा से कहा--राजन्! यह मेरा भाई नही है, मैंने इसे देखा भी नही है। मेरे शरीर मे कोई भी रत्न नही है। मैंने लोभ में पडकर यह अनर्थ किया है। मुदत्त सार्थवाह ने मुझे चार सोने की ईंटें दी और मत्स्योदर को बदनाम करने के लिए कहा—इसीलिए मैंने यह उप-क्रम किया था। यदि आपको मेरे कथन मे सत्य ज्ञात न हो तो मेरे घर से सोने की ईंटे मँगाकर देख सकते है।

पास पहुँचा । वह पान लेने से सकुचाने लगी । राजा ने कहा—क्या तुम पहचानती हो इसे ?

तिलकसुन्दरी ने गहराई से देखा ! धनद को देखकर वह हर्ष-विभोर हो उठी । धनद ने उसे विश्वास दिलाने के लिए कहा – क्या तुम जानती हो शून्य आवास मे तुम्हे कौन मिला था, किसने राक्षस को मारा था । तिलक-सुन्दरी को पूर्ण विश्वास हो गया कि यह धनद ही है ।

राजा ने धनद की सारी सम्पत्ति और तिलकसुन्दरी को उसे सौप दिया । सार्थवाह के वध का आदेश दिया किन्तु धनद ने उसे मुक्त करवा दिया ।

कुछ दिनो के पश्चात् धनद राजा की आज्ञा लेकर अपने परिवार के साथ अपने घर पहुँचा । किन्तु श्रेष्ठी-रत्नसार उसे पहचान न सका । उसने उसका सन्मान किया ।

धनद ने पूछा—आपके धनद नामक एक पुत्र था वह कहा पर है ? सेठ ने कहा, एक बार उसने एक हजार मुद्राओ में एक गाथा खरीदी थी । मैंने उसे उपालंभ दिया और वह खिन्न होकर कही चला गया, बहुत खोज करने पर भी उसका पता न लगा ।

श्रेष्ठी ने गौर से उसे देखा—लगता तो वह तुम्हारे जैसा ही था । पर एक आकृति वाले भी तो अनेक लोग होते है ।

राजा ने देवदत्त सार्थवाह से पूछा—तुम कौन हो? कहाँ से आये हो ? क्या व्यापार करते हो ? यह कन्या कौन है ?

देवदत्त सार्थवाह ने कहा - मैं कटाह द्वीप से आया हूँ, रास्ते में एक छोटे से द्वीप में यह कन्या मुझे मिली। अब मैं आपकी आज्ञा से इसके साथ विवाह करना चाहता हूँ।

राजा ने कन्या से पूछा—क्यों सुभगे ! तुम इस सार्थवाह के साथ विवाह करना चाहती हो ?

कन्या ने दृढ़ता के साथ कहा—नहीं राजन् ! मैं इस दुष्ट का मुँह देखना भी पसन्द नहीं करती। इस दुष्ट ने मेरे पति को समुद्र में गिराया था। मैंने अपने शील की रक्षा के लिए यह प्रस्ताव रखा था कि राजसभा में विवाह करेंगे, पर अब मैं आपकी शरण मे आ चुकी हूँ, आप इस पापात्मा से मेरी रक्षा करें। हे भगवन् ! मेरा पति अब मुझे कब मिलेगा ?

राजा ने उसे प्रेम से ढाँढस बँधाते हुए कहा—तुम किञ्चिन्मात्र भी चिन्ता मत करो, तुम्हारा पति तुम्हें मिल जायेगा।

उसने आँखो से आँसू बरसाते हुए कहा—राजन् ! आप भी मुझ दुखियारी का उपहास कर रहे हैं। इसने उन्हें समुद्र में गिरा दिया, अब वे कहाँ मिलेंगे ?

राजा ने मत्स्योदर को आदेश देते हुए कहा—जरा इसे पान प्रदान करो। मत्स्योदर पान लेकर कन्या के

ो देते हुए कहा इसकी आराधना कीजिए। इससे
ाजकुमारी का स्नेह स्वतः जाग्रत हो जायेगा। धनद के
नुसार उसने उसकी आराधना की। राजकुमारी के
न मे राजकुमार के प्रति प्रेम जाग्रत हो गया। उसने
ाता से कहा और दोनो का विवाह हो गया।

एक दिन राजा कनकरथ के सिर मे अपार वेदना
ई। उपचार करने पर वह घटने के स्थान पर वढती
ो रही, अन्त मे धनद ने रोगापहारक मणि के दिव्य
भाव से राजा की वेदना शान्त कर दी, जिससे राजा
सको पुत्रवत् प्यार करने लगे।

एक वार आचार्य शीलंधर अपने शिष्यो सहित वहाँ
धारे। धनद ने प्रवचन के पश्चात् आचार्य प्रवर से
नवेदन किया – भगवन्! मुझे इस जीवन मे अपार कष्ट
कन कर्मो के कारण झेलने पडे।

आचार्य ने समाधान करते हुए कहा कि धनद तेरा
र्विभव मे महणाक नाम था। मुनि के उपदेश से तुझे
म्यक्त्व की उपलब्धि हुई थी, पर एक वार उत्कृष्ट
पस्वियो को देखकर तेरे मन मे घृणा हो गई। कुछ क्षणो
े पश्चात् तूने सोचा कि मैंने यह दुश्चिन्तन किया है।
ंयमी मुनियो के जीवन को वाह्य दृष्टि से नही अन्त-
र्दृष्टि से देखना चाहिए। उस दुष्ट चिन्तन के कारण ही
ुझे इस जीवन मे कष्ट मिला है। धार्मिक साधना करते

धनद श्रेष्ठी के चरणो मे गिर पडा। पिताजी मैं ही धनद हूँ। विराट् वैभव और पुत्रवधुओ को देखकर श्रेष्ठी की वाछे खिल उठी। उसने स्नेह से उसे चूम लिया। उसने उपालंभ देते हुए कहा—इतने दिन हो गये, तूने अपने आपको प्रकट क्यो नही किया ? बता विदेश यात्रा में तुझे क्या-क्या कष्ट हुआ।

धनद ने सारी कथा सुना दी और आनन्द से रहने लगा। एक दिन राजपुत्र को सर्प ने डस लिया। अनेक उपचार करने पर भी वह स्वस्थ न हुआ। विष के प्रभाव से वह मूच्छित हो गया। धनद ने चक्रेश्वरी देवी के द्वारा दिये गये विष नष्ट करने वाली मणि से जल को अभि-षिक्त कर राजकुमार को पिलाया और उस पर छिड़का, जिससे वह पूर्ण स्वस्थ हो गया। अब से धनद और भी अधिक राजा का कृपा पात्र बन गया।

एक दिन राजकुमार हाथी पर बैठकर घूमने के लिए गया। उसने राजकुमारी श्रीषेणा को देखा, जो सूर नाम की पुत्री थी, उसके भव्य रूप पर राजकुमार मुग्ध हो गया, किन्तु राजकुमारी ने उसे देखकर भी अनदेखा कर दिया। राजकुमार उसके साथ विवाह करना चाहता था। राजा ने भी मंत्री को भेजकर प्रयास किया किन्तु श्रीषेणा ने स्पष्ट इन्कार कर दिया कि मैं मरना पसन्द करती हूँ किन्तु मैं राजकुमार के साथ विवाह न करूँगी। राजकुमार ने अपने हृदय की बात धनद से कही। धनद ने चक्रेश्वरी देवी द्वारा दी गई मणि राजकुमार

हुए भी तेरे मन में जो मलिनता आई, उसी के फलस्वरूप तुझे कष्ट भुगतना पड़ा है।

धनद आदि को वैराग्य हुआ, राजा कनकरथ, माता, पिता और पत्नी के साथ संयम ग्रहण किया और उत्कृष्ट चारित्र की आराधना कर देवलोक में गया।

—शान्तिनाथ चरित्र